मध्यमा परीक्षोपयोगी ग्रन्थ :-

कारिकावली-मुक्तावली—'मयूख' संस्कृत-हिन्दी टीका प्रत्यक्षखण्ड १-२५
कुमारसंभव—'पुंसवनी' संस्कृत-हिन्दी टीका, परीक्षोपयोगी १-५ सर्ग ३-५०
अभिज्ञानशाकुन्तल—प्रो० कान्तानाथ शास्त्री एम. ए. सम्पादित नोट्स, शाकुन्तलसमीक्षा आदि से सुसज्जित 'किशोरकेलि' संस्कृत-हिन्दी टीका ६ ००
छन्दोमञ्जरी—प्रभा-रुचिरा संस्कृत-हिन्दी व्याख्या २-००
तर्कसंग्रह—न्यायबोधिनी, पदकृत्य, विरला, 'इन्दुमती' संस्कृत-हिन्दी टीका १-००
रघुवंश—मल्लिनाथी-सुधा संस्कृत-हिन्दी टीका सहित। सर्ग १ तथा ५ १-५०
द्वि० सर्ग ०-७५ १-२ सर्ग १-५० २-३ सर्ग १-५०
२-४ सर्ग २-२५ १-५ सर्ग ३-००
किरात—परीक्षोपयोगी 'सुधा' संस्कृत-हिन्दी टीका सहित १-२ सर्ग १-२५
संस्कृतरचनाप्रकाश—प्रो० रमाकान्त द्विवेदी। मध्यमा परीक्षा निर्धारित अनुवाद का पाठ्य स्वीकृत ग्रन्थ १-९५
मेघदूत—सञ्जीवनी-चारित्रवर्द्धिनी भावबोधिनी सौदामिनी व्याख्या-चतुष्टयोपेत परीक्षोपयोगी सर्वोत्तम संस्करण १-२५
चन्द्रालोक—पौर्णमासी कथाभट्टी संस्कृत-हिन्दी व्याख्या सहित ३-००
काव्यमीमांसा—मधुसूदनमिश्रकृत संस्कृत-हिन्दी व्याख्या १-५ अध्याय १-२५
सम्पूर्ण ४-००
मध्यकौमुदी—सुधा-इन्दुमती संस्कृत-हिन्दी टीका, नोट्स सहित ५-००
भट्टिकाव्य—चन्द्रकला-विद्योतिनी संस्कृत-हिन्दी व्याख्या परिशिष्ट सहित
१ से ११ सर्ग ७-०० १२ से २२ सर्ग ५-५०
दशकुमार—'बालविबोधिनी' संस्कृत-हिन्दी टीका, अपहारवर्मचरितान्त ३-००
पूर्वपीठिका १-२५, पूर्वपीठिका, प्रथम-अष्टम उच्छ्वास २-०० सम्पूर्ण ५-५०
अलङ्कारसारमञ्जरी—मध्यमानिर्धारित १६ अलङ्कारों का पाठ्य ग्रन्थ ०-४५
व्युत्पत्तिप्रदर्शन-गूढाशुद्धिप्रदर्शन—नवीन परिष्कृत संस्करण ०-५०
प्रबन्धपारिजात—मध्यमा परीक्षा निर्धारित संस्कृत निबन्ध ग्रन्थ १-५०
भारतीयव्रतोत्सव—आचार्य पुरुषोत्तमशर्मा चतुर्वेदी ३-००
महाकवियों की अमर रचनाएँ—चक्रधर शर्मा २-००
जीवनदर्शन—डा० मुंशीराम शर्मा
संस्कृतकविदर्शन—डा० भोलाशंकर व्या

प्राप्तिस्थानम्—चौखम्बा संस्कृत सी

मुद्रक : विद्याविलास प्रेस

Library IIAS, Shimla
S 491.25 M 277 V
00006566

॥ श्रीः ॥

हरिदास संस्कृत ग्रन्थमाला

१६१

सर्वविध-मध्यमापरीक्षोपयुक्तं

व्युत्पत्तिप्रदर्शनम्

तथा

गूढाशुद्धिप्रदर्शनम्

S
491.25
M 277 V

S
491.25
M277V

सीरीज आफिस, वाराणसी-१

INDIAN INSTITUTE OF
ADVANCED STUDY
SIMLA

|| श्रीः ||

हरिदास संस्कृत ग्रन्थमाला
१६१

|| श्रीः ||

सर्वविधमध्यमापरीक्षोपयुक्तं

व्युत्पत्तिप्रदर्शनम्

तथा

गूढाशुद्धिप्रदर्शनम्

काशीस्थसंन्यासिसंस्कृतमहाविद्यालयसाहित्यप्रधानाध्यापक-
साहित्य-वेदान्ताचार्य—
पण्डित श्रीमहादेवोपाध्यायेन विरचितम्

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी-१

द्वितीयावृत्तिः] मूल्यं ०-५० [सन् १९६२

Library IIAS, Shimla
S 491.25 M 277 V
00006566

प्राक्कथन

संस्कृतसाहित्य में शब्दसाधुता को अत्यधिक महत्त्व दिया गया है । वस्तुतः देखा जाय तो जब अभिमत अर्थ में तदर्थवाचक समुचित शब्द का प्रयोग किया जाता है तब वक्ता तथा श्रोता को निरतिशय आनन्द का अनुभव होता है। इसके विपरीत असाधु तथा अनुपयुक्त शब्द के प्रयोग च्युतसंस्कारतादि दोष से दूषित होने पर श्रोता के वैमुख्यप्रद हो जाते हैं । इसीलिये महाभाष्यकार भगवान् पतञ्जलिने कहा है 'एकः शब्दः सम्यग् ज्ञातः सुष्ठुप्रयुक्तः स्वर्गे लोके च कामधुग् भवति' एक भी शब्द का भलीभाँति प्रयोग तथा ज्ञान उभय लोक में कल्याणकारी होता है ।

इस पुस्तिका में जिन पदों के प्रयोग में भ्रम होना स्वाभाविक होता है उन पदों का अशुद्ध रूप दिखाकर उसी के सामने शुद्धरूप दिया गया है । इस संकलन में कहीं अष्टाध्यायी तथा कहीं सिद्धान्तकौमुदी के प्रकरणों के आधार पर कारकाधिकार, आत्मनेपदाधिकार, परस्मैपदाधिकार इत्यादि नाम रखे गये हैं । प्रकरण से बहिर्भूत भ्रामक पदों का प्रयोग प्रकीर्णाधिकार में किया गया है ।

प्रत्येक पृष्ठमें वाक्यों की क्रमसंख्या के अनुसार नीचे हिन्दी में शुद्धयशुद्धि के कारण भी दिये गये हैं, जिनमें सूत्र, वार्तिक तथा उनके अर्थ के सहित शब्द के साधुत्व तथा असाधुत्व का विवेचन कर दिया गया है । यह पुस्तिका मध्यमा परीक्षा के 'व्युत्पत्तिप्रदर्शन' पत्र के लिये उपयोगी होते हुए भ्रामक शब्दों की साधुता को स्पष्ट करने में अनुपम है । यदि विद्वज्जन उपादेय समझ कर इसे अपनाने की कृपा करेंगे तो हम कृतज्ञता के साथ अपने प्रयत्न को सफल समझेंगे ।

S
491.25
M277V

रक्षाबन्धन
सं० २००९

विदुषामनुग्राह्यो
महादेवोपाध्यायः

INDIAN INSTITUTE OF ADVANCED STUDY
Acc. No. 6566
Date 16/1/65

❀ श्रीगणेशाय नमः ❀

व्युत्पत्तिप्रदर्शनम्

[१] अथ कारकाधिकारः

१ × भूपतिर्दुर्गे सपत्नानरौत्सीत् ।	१ × भूपतिर्दुर्गं सपत्नानरौत्सीत् ।
२ ते बहुदिनानि कलिङ्गेष्वासत ।	२ ते बहुदिनानि कलिङ्गानासत ।
३ राजाऽमात्यंस्वर्गसुखमनुभावयति ।	३ राजाऽमात्येन स्वर्गसुखमनुभावयति ।
४ भूपः सेनापतिं युद्धसम्भारान्नाययति ।	४ भूपः सेनापतिना युद्धसम्भारान्नाययति ।

१. 'अकथितं च' दुह् , याच् , पच् , दण्ड, रुध् , प्रच्छ, चि, ब्रू , शास् , जि, मथ् , मुष् , नी, ह्री, कृष् और वह धातु के कर्म से सम्बद्ध, अपादानादि कारकों से अविवक्षित जो अन्य कारक वे कर्म होते हैं। यहाँ रुध् धातु के कर्म सपत्न से सम्बद्ध अधिकरण कारक दुर्ग की कर्म संज्ञा हुई 'कर्मणि द्वितीया' से द्वितीया हो गई ।

२. ❀'अकर्मकधातुभिर्योगे देशः कालो भावो गन्तव्योऽध्वा च कर्मसञ्ज्ञक इति वाच्यम्' अकर्मक धातुओं के योग में देशविशेष, कालविशेष, भाववाचक और मार्गवाचक (योजन, क्रोश) प्रभृति कर्मसंज्ञक होते हैं। यहाँ अकर्मक आस् धातु के योग में कालवाचक दिन की कर्म संज्ञा हो गई ।

३. 'गतिबुद्धि'—इस नियम से गत्यर्थक, सामान्यज्ञानार्थक, भक्षणार्थक, शब्दकर्मक और अकर्मक धातुओं का ही अण्यन्तावस्था का कर्ता ण्यन्तावस्था में कर्म होता है। यहाँ सामान्यज्ञानार्थक ण्यन्त अनुपूर्वक भू धातु नहीं है। अतः अण्यन्तावस्था के कर्त्ता अमात्य की करण संज्ञा हुई ।

४. नी और वह् धातु गत्यर्थक हैं पर ❀'नीवह्योर्न' इस निषेध से इनके कर्ता ण्यन्तावस्था में कर्मसञ्ज्ञक नहीं होते। अतः सेनापति शब्द से करण संज्ञा होकर तृतीया हुई ।

× – × ग्रन्थेऽस्मिन्नेभिः प्रकारैः स्थूलाक्षरनिर्दिष्टानि वाक्यान्यशुद्धानि, सूक्ष्माक्षरनिर्दिष्टानि वाक्यानि तु शुद्धानि सन्तीत्यवधेयम् ।

१ यजमानःपुरोधसं फलानि भक्षयति।	१ यजमानः पुरोधसा फलानि भक्षयति।
२ धर्माधिकारिणो धर्मासनेष्वध्यासामासुः।	२ धर्माधिकारिणो धर्मासनान्यध्यासामासुः।
३ स मुनिः पर्णकुटीरे सुखमध्यवात्सीत्।	३ स मुनिः पर्णकुटीरं सुखमध्यवात्सीत्।
४ सर्वतश्चौरस्य समेत्य जना ऊचुः- 'धिक् तव'।	४ सर्वतश्चौरं समेत्य जना ऊचुः 'धिक् त्वाम्'।
५ राष्ट्रपतेः परितो जनतोद्घोषयत् 'वन्दे मातरम्'	५ राष्ट्रपतिं परितो जनतोद्घोषयत् 'वन्दे मातरम्'।
६ धर्मादन्तरेण न क्वापि जयसिद्धिः।	६ धर्ममन्तरेण न क्वापि जयसिद्धिः।

---

१. **'भक्षेरहिंसार्थस्य न'** इस निषेध से अहिंसार्थक भक्ष धातु के प्रयोग में **'गतिबुद्धि'** यह नियम नहीं लगता। अतः पुरोधस् शब्द की करण संज्ञा हुई।

२. **'अधिशीङ्स्थासां कर्म'** अधि उपसर्गपूर्वक शीङ्, स्था और आस् धातु के प्रयोग में आधार की कर्म संज्ञा होती है। यहाँ अधिपूर्वक आस् धातु के प्रयोग में धर्मासन शब्द की कर्म संज्ञा हुई।

३. **'उपान्वध्याङ्वसः'** उप, अनु, अधि, और आङ् उपसर्गपूर्वक वस् धातु के प्रयोग में आधार कर्म होता है। यहाँ अधिपूर्वक वस् धातु के प्रयोग में आधार पर्णकुटीर की कर्म संज्ञा हुई।

४. **'उभसर्वतसोः कार्या'** उभयतः, सर्वतः, धिक्, उपरि-उपरि, अधि-अधि, अधः-अधः के योग में द्वितीया विभक्ति होती है। इस वाक्य में सर्वतः के योग में चौर शब्द से तथा धिक् शब्द के योग में युष्मद् शब्द से द्वितीया हुई।

५. ***'अभितः परितः'** अभितः, परितः, समया, निकषा, हा और प्रति के योग में भी द्वितीया विभक्ति होती है। यहाँ परितः शब्द के सम्बन्ध से राष्ट्रपति शब्द से द्वितीया विभक्ति हुई।

६. **'अन्तराऽन्तरेण युक्ते'** अन्तरा और अन्तरेण इन अव्ययों के योग में द्वितीया होती है। यहाँ 'अन्तरेण' इस अव्यय के योग में धर्म शब्द से द्वितीया हुई।

१ पापेनानुवसितं जनं सर्वो लोको जुगुप्सते।	१ पापमनुवसितं जनं सर्वो लोको जुगुप्सते।
२ कातरा अनु व्यवसायिभ्य इति को न जानाति।	२ कातरा अनु व्यवसायिनं इति को न जानाति।
३ उपकातराश्च व्यवसायिन इति तु प्रसिद्धमेव।	३ उपकातरेषु व्यवसायिन इति प्रसिद्धमेव।
४ राज्यं भवतोऽनु, इति भरतो रामं प्रार्थितवान्।	४ राज्यं भवन्तमनु, इति भरतो रामं प्रार्थितवान्।
५ भिक्षुर्दिनद्वयेन विहारे प्रवचनं श्रृणोति स्म।	५ भिक्षुर्दिनद्वयं विहारे प्रवचनं श्रृणोति स्म।

---

१. 'तृतीयार्थे' तृतीयार्थ व्यक्त होने पर, प्रयुक्त (अनु) कर्मप्रवचनीय कहलाता है और उसके योग में द्वितीया होती है।

२. 'हीने' जिस वाक्य में हीनार्थ व्यक्त होता है वहाँ (अनु) की कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है और उसके योग में द्वितीया होती है। कातर व्यवसायियों से हीन होते हैं इस अर्थ की व्यक्ति में अनु के योग में व्यवसायिनः यहाँ द्वितीया हुई।

३. 'उपोधिके च' अधिक तथा हीन अर्थ की व्यक्ति में 'उप' की कर्मप्रवचनीय सञ्ज्ञा होती है। पर अधिकार्थ में 'यस्मादधिकम्–' इससे सप्तमी होती है। यहाँ व्यवसायी में श्रेष्ठता की व्यक्ति हो रही है अतः कातरेषु यहाँ सप्तमी हुई।

४. 'लक्षणेत्थम्भूताख्यानभागवीप्सासु प्रतिपर्यनवः' जिस वस्तु का ज्ञान किसी वस्तु के ज्ञान का उत्पादक होता है उसे 'लक्षण' कहते हैं। जहाँ किसी कार्य से वस्तु, किसी विशेषण का लाभ करता है उसे 'इत्थम्भूताख्यान' कहते हैं। इनकी तथा भाग और वीप्सा (द्विरुक्ति) की व्यक्ति में प्रति, परि और अनु की पूर्वसंज्ञा होती है। इस वाक्य में भाग व्यक्त होता है। अतः अनु को कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है। उसके योग में (भवन्तम्) यहाँ द्वितीया हुई।

५. 'कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे' काल और मार्ग वाचक शब्दों में द्वितीया होती है यदि काल और मार्ग का निरन्तर सम्बन्ध हो। यहाँ काल का निरन्तर सम्बन्ध होने से दिनद्वय शब्द से द्वितीया हुई।

१ दिवसेन योजनेन वा फक्किको-दूघुष्टापि स्मृतिपथं नायात् ।	१ दिवसं योजनं वा फक्किकोदूघुष्टापि स्मृतिपथं नायात् ।
२ मुखेभ्यो भीमा राक्षस्यः सीतां परिवव्रुः ।	२ मुखैर्भीमा राक्षस्यः सीतां परिवव्रुः ।
३ तथा दुर्वृत्तः स राजा कुपात्रेभ्यो धनानि समयच्छत ।	३ तथा दुर्वृत्तः स राजा कुपात्रैर्धनानि समयच्छत ।
४ स उदारो दुर्गतान् वस्त्राणि व्यतरत् ।	४ स उदारो दुर्गतेभ्यो वस्त्राणि व्यतरत् ।
५ लोभाक्रान्तो द्विजोऽपि ष्टुयात्पामरान् ।	५ लोभाक्रान्तो द्विजोऽपि स्तुयात्पामरान् ।

१. यदि फलप्राप्ति व्यक्त हो तो निरन्तर सम्बन्ध में काल और मार्ग वाचक शब्द से तृतीया होती है अन्यथा नहीं । इस स्थल में फलप्राप्ति न होने से 'कालाध्वनोः' से द्वितीया हुई ।

२. 'येनाङ्गविकारः' जिस विकृत अङ्ग से अङ्गी विकृत होता है उससे तृतीया होती है । यहाँ राक्षसियों को विकृत करने वाले मुख से तृतीया हुई ।

३. *'अशिष्टव्यवहारे दाणः प्रयोगे चतुर्थ्यर्थे तृतीया' जिसके सम्बन्ध से व्यवहार में अशिष्टता प्रतीत हो तद्वाचक शब्द से चतुर्थी के अर्थ में तृतीया होती है । यहाँ कुपात्र के सम्बन्ध से अशिष्टता प्रतीत हो रही है अतः कुपात्र शब्द से तृतीया हुई ।

४. 'कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम्' कर्ता, दानक्रिया के कर्म से जिससे सम्बन्ध करना चाहता है उसकी सम्प्रदान संज्ञा होती है और 'सम्प्रदाने चतुर्थी' इससे चतुर्थी होती है । यहाँ कर्ता (उदार) दानक्रिया के कर्म वस्त्र का दुर्गतों से सम्बन्ध करना चाहता है अतः दुर्गत से चतुर्थी हुई ।

५. 'अपिः पदार्थसम्भावनाऽन्ववसर्गगर्हासमुच्चयेषु' पदार्थ, सम्भावना (डींग हांकना), अन्ववसर्ग (इष्ट अनुमति), निन्दा और समुच्चय (कई कार्यों का साथ होना) इनकी व्यक्ति में (अपि) की कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है । इस वाक्य में निन्दा है । अतः 'उपसर्गात् सुनोति' से (स्तुयात्) यहाँ षत्व नहीं हुआ ।

१ कर्मठानां रोचमान आचार्यस्तान् कर्मसु प्रावर्तयत् ।	१ कर्मठेभ्यो रोचमान आचार्यस्तान् कर्मसु प्रावर्त्तयत् ।
२ सम्भारापहरणलालसोधूर्तःसाधो- निह्नुवानो बह्वशपत् ।	२ सम्भारापहरणलालसो धूर्तः साधवे निह्नुवानो बह्वशपत् ।
३ तस्य द्रविणं धारयन् स जाल्मो बहु तर्जितोऽपि नाङ्गीचकार ।	३ तस्मै द्रविणं धारयन् स जाल्मो बहु तर्जितोऽपि नाङ्गीचकार ।
४ बहु भर्त्सितोऽपि धनं स्पृहयमाण- स्तं नाक्रुध्यत् ।	४ बहु भर्त्सितोऽपि धनाय स्पृहयमाणस्तस्मै नाक्रुध्यत् ।
५ पिपठिषवे तुभ्यं गुरुरकारणं कथं समक्रुध्यत् ।	५ पिपठिषुं त्वां गुरुरकारणं कथं समक्रुध्यत् ।

१. 'रुच्यर्थानां प्रीयमाणः' रुचि अर्थवाले धातुओं के प्रयोग में प्रीत्याश्रय की संप्रदान संज्ञा होती है। यहाँ 'रुच्' धातु के प्रयोग में आचार्य की प्रीति के आश्रय कर्म की सम्प्रदान संज्ञा होकर चतुर्थी हुई।

२. 'श्लाघह्नुङ्स्थाशपां ज्ञीप्स्यमानः' श्लाघ्, ह्नुङ्, स्था और शप् धातु के प्रयोग में बोधनेष्ट की संप्रदान संज्ञा होती है और सम्प्रदान से चतुर्थी विभक्ति होती है। यहाँ 'ह्नुङ्' धातु के प्रयोग में बोधनेष्ट साधु शब्द से चतुर्थी हुई।

३. 'धारेरुत्तमर्णः' धारि धातु के प्रयोग में उत्तमर्ण (उधार देने वाले) की सम्प्रदान संज्ञा होती है। अतः उत्तमर्ण बोधक तत् शब्द से चतुर्थी हुई।

४. 'स्पृहेरीप्सितः' स्पृह् धातु के प्रयोग में अभीष्ट धातु की पूर्व संज्ञा होती है। तथा 'क्रुधद्रुहेर्ष्यासूयार्थानां यं प्रति कोपः' क्रुध्, द्रुह्, ईर्ष्या और असूयार्थक धातु के प्रयोग में क्रोध के विषय को उक्त संज्ञा होती है। यहाँ स्पृह् धातु के योग में अभीष्ट धन से तथा क्रुध् धातु के प्रयोग में कोप के विषय तत् से चतुर्थी हुई।

५. 'क्रुधद्रुहोरुपसृष्टयोः कर्म' 'सोपसर्गक क्रुध्, द्रुह्, के प्रयोग में कोप के विषय की पूर्व संज्ञा होती है। यहाँ सोपसर्ग क्रुध् धातु है। अतः पिपठिषु की कर्म संज्ञा हुई।

१ संशयापन्नश्छात्रो गुरुमभ्येत्य विद्या ईक्षते ।	१ संशयापन्नश्छात्रो गुरुमभ्येत्य विद्याभ्य ईक्षते ।
२ उदारचेताः प्रार्थयमानान् धनानि प्रत्यश्रौषीत् ।	२ उदारचेताः प्रार्थयमानेभ्यो धनानि प्रत्यश्रौषीत् ।
३ गृणतश्छात्रान् गुरवोऽनारतं प्रतिगृणन्ति ।	३ गृणद्भ्यश्छात्रेभ्यो गुरवोऽनारतं प्रतिगृणन्ति ।
४ लोकस्य हितं विधातुं साधवः शश्वत् बद्धकक्षा भवन्ति ।	४ लोकाय हितं विधातुं साधवः शश्वत् बद्धकक्षा भवन्ति ।
५ सुरैर्भीता राक्षसाः प्रच्छन्नमितस्ततः परिबभ्रमुः ।	५ सुरेभ्यो भीता राक्षसाः प्रच्छन्नमितस्ततः परिबभ्रमुः ।
६ अधर्मेण पराजयमानो वाल्मीकिर्महामुनिपदवीमापत् ।	६ अधर्मात्पराजयमानो वाल्मीकिर्महामुनिपदवीमापत् ।

---

१. 'राधीक्ष्योर्यस्य विप्रश्नः' राध और ईक्ष् धातु के प्रयोग में जिसके बारे में अनेक प्रश्न किये जायें उसकी सम्प्रदान संज्ञा होती है । यहाँ विद्या के सम्बन्ध में विविध प्रश्न हैं अतः ईक्ष् के प्रयोग में विद्या से चतुर्थी हुई ।

२. 'प्रत्याङ्भ्यां श्रुवः पूर्वस्य कर्ता' प्रति और आङ् पूर्वक (श्रु) धातु के प्रयोग में प्रवृत्त कराने वाले प्रार्थी की सम्प्रदान संज्ञा होती है । यहाँ प्रतिपूर्वक 'श्रु' धातु है अतः प्रार्थयमान से चतुर्थी हुई ।

३. अनुप्रतिगृणश्च' अनु और प्रति पूर्वक (गृ) धातु के प्रयोग में पूर्व व्यापार के कर्ता की संप्रदान संज्ञा होती है । यहाँ प्रतिपूर्वक (गृ) धातु के प्रयोग में छात्र शब्द से चतुर्थी हुई ।

४. 'हितयोगे च' जिसका हित से सम्बन्ध हो उससे चतुर्थी विभक्ति होती है । अतः हित के सम्बन्धी लोक से चतुर्थी हुई ।

५. 'भीत्रार्थानां भयहेतुः' भयार्थक और रक्षार्थक धातु के प्रयोग में भय के कारण से अपादान संज्ञा होकर पञ्चमी विभक्ति होती है । यहां 'भी' धातु के प्रयोग में भय के कारण सुर शब्द से पञ्चमी विभक्ति हुई ।

६. 'पराजेरसोढः' परा उपसर्ग पूर्वक जि धातु के प्रयोग में, ग्लानि के विषय की अपादान संज्ञा होती है । यहां ग्लानि के विषय अधर्म से पञ्चमी विभक्ति हुई ।

१ रक्षोभिरन्तर्दधाना देवा विरञ्चिं शरणं गताः।	१ रक्षोभ्योऽन्तर्दधाना देवा विरञ्चिं शरणं गताः।
२ कथावाचकात् रम्यकथामाकर्ण्य प्रहृष्टचेतसः श्रोतारः स्वस्वनिकेतनानि जग्मुः।	२ कथावाचकस्य रम्यकथामाकर्ण्य प्रहृष्टचेतसः श्रोतारः स्वस्वनिकेतनानि जग्मुः।
३ गुरुणा गृहीतविद्योऽन्तेवासी विद्वत्तामाप।	३ गुरोर्गृहीतविद्योऽन्तेवासी विद्वत्तामाप।
४ श्रूयते, हिमालयेन मैनाको जातः।	४ श्रूयते, हिमालयान्मैनाको जातः।
५ आदित्येन प्रभवन्तीव दमयन्ती लोकैरलोकि।	५ आदित्यात्प्रभवन्तीव दमयन्ती लोकैरलोकि।
६ तव ऋते स वराको बहुखेदमनुभवति।	६ त्वदृते स वराको बहुखेदमनुभवति।

---

१. 'अन्तर्धौ येनादर्शनमिच्छति' व्यवधान रहने पर जिसकी दृष्टि से अपने को बचाना चाहता है वह अपादान होता है। इस वाक्य में देवता चाहते थे कि राक्षस हमें न देखें। अतः 'रक्षः' शब्द से पञ्चमी विभक्ति हुई।

२. 'आख्यातोपयोगे' यदि नियमपूर्वक विद्या सीखी जाय तो शिक्षक अपादान होता है। यहाँ कथाश्रवण ब्रह्मचर्यादि नियम से विद्या प्राप्ति नहीं है। अतः (कथा वाचक से) षष्ठी हुई।

३. इस स्थल में नियमपूर्वक विद्याप्राप्ति है अतः यहाँ शिक्षक (गुरु) को अपादान संज्ञा हो गई।

४. 'जनिकर्तुः प्रकृतिः' जिससे किसी वस्तु की उत्पत्ति होती है वह अपादान संज्ञक होता है। यहाँ हिमालय से मैनाक की उत्पत्ति हुई अतः हिमालय से पञ्चमी हुई।

५. 'भुवः प्रभवः' होने वाले वस्तु के कारण की अपादान संज्ञा होती है। अतः आदित्य से पञ्चमी विभक्ति हुई।

६. 'अन्यारादितरर्तेदिक्शब्दाञ्चूत्तरपदाजाहियुक्ते' अन्यार्थक शब्द, आरात्, इतर, ऋते, दिशावाचक शब्द, अञ्चूत्तरपद, आच् और आहि प्रत्ययान्त के योग में पञ्चमी विभक्ति होती है। यहाँ 'ऋते' के योग में युष्मद् शब्द से पञ्चमी विभक्ति हुई।

१ अमात्य एव राजानं प्रति सर्वराज्यधुरमुदवहत् ।	१ अमात्य एव राज्ञः प्रति सर्वराज्यधुरमुदवहत् ।
२ न खलु साधनानां पृथक् कोऽपि कार्यसिद्धिमेति ।	२ न खलु साधनेभ्यः पृथक् कोऽपि कार्यसिद्धिमेति ।
३ पिपासाया हेतुना जलमन्विष्यति ।	३ पिपासाया हेतोर्जलमन्विष्यति ।
४ नगराद्दक्षिणतो विजनं विपिनमदृश्यत ।	४ नगरस्य दक्षिणतो विजनं विपिनमदृश्यत ।
५ उत्तरेण च नगरात् स्वच्छप्रवाहा तरङ्गिणी प्रवहति ।	५ उत्तरेण च नगरं स्वच्छप्रवाहा तरङ्गिणी प्रवहति ।

---

१. 'प्रतिः प्रतिनिधिप्रतिदानयोः' प्रतिनिधि और बदलने अर्थ में (प्रति) की कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है। 'प्रतिनिधिप्रतिदाने च यस्मात्' जिसका प्रतिनिधि हो और जिससे बदला जाय उससे पञ्चमी विभक्ति होती है। कर्मप्रवचनीय के योग में यहाँ मन्त्री राजा का प्रतिनिधि है। अतः राजा से पञ्चमी विभक्ति हुई है।

२. 'पृथग्विनानानाभिस्तृतीयान्यतरस्याम्' पृथक्, विना, नाना के योग में तृतीया, पञ्चमी तथा द्वितीया विभक्ति होती है। यहाँ 'पृथक्' के योग में साधन शब्द से पञ्चमी विभक्ति हुई।

३. 'षष्ठी हेतुप्रयोगे' यदि कारण की व्यक्ति हो तो 'हेतु' शब्द के प्रयोग में षष्ठी विभक्ति होती है।

४. 'षष्ठ्यतसर्थप्रत्ययेन' जिस प्रत्यय का दिक् देश तथा काल रूप अर्थ हो ऐसे 'अस्ताति' प्रभृति अतसर्थप्रत्यय हैं, तदन्त के योग में षष्ठी विभक्ति होती है। यहाँ अतसन्त 'दक्षिणतः' के योग में नगर शब्द से षष्ठी विभक्ति हुई।

५. 'एनपा द्वितीया' एनप् प्रत्ययान्त के योग में द्वितीया विभक्ति होती है। यहाँ एनबन्त 'उत्तरेण' के योग में नगर शब्द से द्वितीया हुई।

१ सीतायाः सदने सौख्यशतस्मरणं कुर्वन् रामः पर्याप्तमश्रूणि मुमोच ।	१ सीतायाः सदने सौख्यशतस्य स्मरणं कुर्वन् रामः पर्याप्तमश्रूणि मुमोच ।
२ आत्मजः सर्वथा जनकोपस्करणं विदधाति ।	२ आत्मजः सर्वथा जनकस्योपस्करणं विदधाति ।
३ मोहेन विपश्चित्पीडनं न सम्भाव्यते ।	३ मोहेन विपश्चितः पीडनं न सम्भाव्यते ।
४ अनुकूलदैवं प्रतीक्षमाणा जना धृतिनाथनमभिलषन्ति ।	४ अनुकूलदैवं प्रतीक्षमाणा जना धृतेर्नाथनमभिलषन्ति ।

अब आठ सूत्रों से की हुई षष्ठी प्रतिपदविधाना कही जाती है और इसका समासाभाव फल है। अतः समास के योग्य उदाहरण भी दिये जाते हैं।

१. **'अधीगर्थदयेशां कर्मणि'** अधीगर्थ (स्मरणार्थ), दय तथा ईश धातु के कर्म से षष्ठी विभक्ति होती है। यहाँ 'स्मृ' धातु के कर्म 'सौख्यशत' शब्द से समास न होकर षष्ठी विभक्ति हुई।

प्रकरणवश, तिङन्त के भी वाक्य दे रहे हैं (पूर्वसमृद्धेः स्मरन्तो दूरदर्शिनोऽधुना विपन्नस्य भारतस्य दयन्ते)।

२. **'कृञः प्रतियत्ने'** जहाँ कोई किसी का गुण ग्रहण करता है ऐसे स्थल में (कृञ्) धातु के प्रयोग में षष्ठी विभक्ति होती है। यहाँ आत्मज जनक का गुण ग्रहण करता है। अतः जनक शब्द से षष्ठी विभक्ति तथा समासाभाव हुआ। तिङन्त—(आत्मजः सर्वथा जनकस्योपस्कुरुते)।

३. **'रुजार्थानां भाववचनानामज्वरेः'** यदि भाववाचक शब्द कर्ता हो तो ज्वर तथा सन्तापि धातु को छोड़ कर पीडार्थक धातुओं के योग में कर्मकारक से षष्ठी विभक्ति होती है। यहाँ 'पीड्' धातु के योग में कर्म विपश्चित् से षष्ठी तथा समासाभाव हुआ। तिङन्त—(देशहितैषिणां पराक्रमो देशद्रोहिणां रुजति)।

४. **'आशिषि नाथः'** आशंसार्थक 'नाथ' धातु के प्रयोग में जिस की आशंसा की जाय उससे षष्ठी विभक्ति होती है। इस वाक्य में (धृतिर्मे भूयात्) यह आशंसा है। अतः धृति शब्द से षष्ठी तथा समासाभाव हुआ। तिङन्त—(......धृतेः नाथन्ते)।

१ प्रजाक्लेशनिहननं कर्तुं नृपो प्रधानामात्यैर्मन्त्रयति, प्रवेशमलभमानश्च भृत्यस्ताम्बूलज्ञानं वाञ्छति।	१ प्रजाक्लेशस्य निहननं कर्तुं नृपः प्रधानामात्यैर्मन्त्रयति, प्रवेशमलभमानश्च भृत्यस्ताम्बूलस्य ज्ञानं वाञ्छति।
२ युष्मभ्यं द्रुह्यता तेन निजप्राणपणनमिव विहितम्।	२ युष्मभ्यं द्रुह्यता तेन निजप्राणानां पणनमिव विहितम्।
३ अस्माभिः कलहायमानास्ते निजभोगानदेविषुः।	३ अस्माभिः कलहायमानास्ते निजभोगानामदेविषुः।
४ नीचैसङ्गताः पूर्वभारतीया निजोन्नतिभिः सम्पद्भिश्च प्रादीव्यन्।	४ नीचैः सङ्गताः पूर्वभारतीया निजोन्नतीः सम्पदश्च, वा निजोन्नतीनां सम्पदां च प्रादीव्यन्।

---

१. 'जासिनिप्रहणनाटक्राथपिषां हिंसायाम्' हिंसार्थक जास्, नि, प्र, प्रनि तथा निप्रपूर्वक हन्, नाट् क्राथ्, पिष् धातु के प्रयोग में कर्म कारक से षष्ठी विभक्ति होती है। यहाँ निपूर्वक 'हन्'धातु के प्रयोग में कर्म क्लेश से षष्ठी विभक्ति तथा समासाभाव हुआ। तिङन्त—(भव्यायतिमालोच्य धीरा मनसो मन्योरुज्जासयन्ति)।

'ज्ञोऽविदर्थस्य करणे' ज्ञानातिरिक्तार्थक 'ज्ञा' धातु के करण कारक से षष्ठी विभक्ति होती है। 'ताम्बूलदानव्याजेन प्रवेशं वाञ्छति' यहाँ यह अर्थ है। अतः ताम्बूल शब्द से षष्ठी हुई। तिङन्त—(ताम्बूलस्य जानीते)।

२. 'व्यवहृपणोः समर्थयोः' जूआ तथा क्रयविक्रय के व्यवहार में वि तथा अवपूर्वक हृ तथा पण धातु समानार्थक हैं। इन के प्रयोग में कर्म से षष्ठी होती है। यहाँ 'पण' धातु के प्रयोग में प्राण शब्द से षष्ठी तथा समासाभाव हुआ।

तिङन्त—(सतो द्रुह्यन् स निजप्राणानामपणिष्टेव) सज्जनों से द्रोह कर मानो उसने प्राणों की बाजी लगाई।

३. 'दिवस्तदर्थस्य' जूआ तथा विक्रय में दिव के कर्म से षष्ठी होती है। यहाँ दिव धातु के प्रयोग में कर्म भोग से षष्ठी विभक्ति हुई।

४. 'विभाषोपसर्गे' पूर्वोक्त अर्थ में उपसर्ग सहित दिव धातु के प्रयोग में षष्ठी वा द्वितीया होती है।

१ कौरवाः शतकृत्वोऽर्जुनेन क्षणवेधं विलोक्य चुक्षुभुः।	१ कौरवाः शतकृत्वोऽर्जुनेन क्षणस्य वेधं विलोक्य चुक्षुभुः।
२ स्वयं पटं निर्मातारो जनाः सुखमेधन्ते।	२ स्वयं पटस्य निर्मातारो जनाः सुखमेधन्ते।
३ विद्वांसः सर्वत्र लोकैः पूजिता भवन्ति।	३ विद्वांसः सर्वत्र लोकानां पूजिता भवन्ति।
४ गुणानामभिलाषुकाः कुतोऽपि ग्रहीतुं प्रयतन्ति।	४ गुणानभिलाषुकाः कुतोऽपि ग्रहीतुं प्रयतन्ते।
५ प्रवृत्तेराख्यायकः स चारो भूपतिं गमिष्यति।	५ प्रवृत्तिमाख्यायकः स चारो भूपतिं गमिष्यति।

---

१. **'कृत्वोऽर्थप्रयोगे कालेऽधिकरणे'** कृत्वसुच् के समानार्थ जो प्रत्यय तदन्त के प्रयोग में कालवाची अधिकरणमें षष्ठी विभक्ति होती है। यहाँ कृत्वसुच् प्रत्ययान्त 'शतकृत्वः' के प्रयोग में कालवाची अधिकरण 'क्षण' से षष्ठी विभक्ति हुई। तिङन्त—(शतकृत्वो दिवसस्यानुध्यायति)।

२. **'कर्तृकर्मणोः कृति'** कृत् प्रत्ययान्त के योग में कर्ता और कर्म से षष्ठी होती है। अतः कर्म 'पट' से षष्ठी विभक्ति हुई।

३. **'क्तस्य च वर्तमाने'** वर्तमान अर्थ में क्तान्त के प्रयोग में षष्ठी होती है। यहाँ **'मतिबुद्धिपूजार्थेभ्यश्च'** इस सूत्र से वर्तमान में 'क्त' प्रत्यय हुआ है। अतः 'लोक' शब्द से षष्ठी हुई।

४. **'न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम्'** लादेश, उ, उकञ्, निष्ठा (क्त, क्तवतु) प्रत्ययान्त, खलर्थप्रत्ययान्त और शतृप्रत्यय से लेकर तृन् प्रत्ययान्त के योग में कर्ता और कर्म से षष्ठी नहीं होती। यहाँ 'उकञ्' प्रत्ययान्त अभिलाषुक पद के योग में कर्म 'गुण' से षष्ठी नहीं हुई।

५. **'अकेनोर्भविष्यदाधमर्ण्ययोः'** भविष्यत् अर्थ में (ण्वुल्) प्रत्ययान्त तथा भविष्यत् और आधमर्ण्य अर्थ में (णिनि) प्रत्ययान्त के योग में कर्म से षष्ठी नहीं होती। यहाँ **'भविष्यति गम्यादयः'** इस अधिकारमें विहित 'ण्वुल्' है।

१ महतां महद्भिरेवोपमा दीयमाना शोभति।	१ महतां महतामेवोपमा दीयमाना शोभते।
२ दुरूहकार्याय कुशला एव जनाःसर्वत्राखिलकार्येषु धुरि नियोज्यन्ते।	२ दुरूहकार्यस्य कुशला एव जनाः सर्वत्राखिलकार्येषु धुरि नियोज्यन्ते।
३ अर्जुन एव भ्रातृभ्यो द्रोणस्याधिकप्रिय आसीत्।	३ अर्जुन एव भ्रातॄणां द्रोणस्याधिकप्रिय आसीत्।
४ साधुर्गुरोः शिष्यो भक्त्या गुरुं पूजयति।	४ साधुर्गुरौः शिष्यो भक्त्या गुरुं पूजयति।
५ देशस्वतन्त्रतायै समुत्सुका जनाः प्राणेभ्योऽपि प्रयतन्ते।	५ देशस्वतन्त्रतायां समुत्सुका जनाः प्राणेभ्योऽपि प्रयतन्ते।

१. 'तुल्यार्थैरतुलोपमाभ्यां तृतीयान्यतरस्याम्' तुल्यार्थ शब्दों के योग में जिससे तुलना की जाय उससे तृतीया होती है और पक्ष में षष्ठी होती है। पर तुला और उपमा के योग में तृतीया नहीं होती।

२. 'आयुक्तकुशलाभ्यां चासेवायाम्' आयुक्त और कुशल शब्द के प्रयोग में, जिस कार्य में तत्परता हो उससे षष्ठी तथा सप्तमी विभक्ति होती है। यहाँ 'कुशल' शब्द के प्रयोग में तत्परता के विषय कार्य से षष्ठी विभक्ति हुई।

३. 'यतश्च निर्धारणम्' जाति, गुण, क्रिया अथवा संज्ञा के द्वारा समूह से एकदेश के अलग करने को 'निर्धारण' कहते हैं, वह निर्धारण जिससे किया जाय उससे षष्ठी अथवा सप्तमी विभक्ति होती है। यहाँ भ्रातृ से अर्जुन को पृथक् किया गया है। अतः भ्रातृ शब्द से षष्ठी विभक्ति हुई।

४. 'साधुनिपुणाभ्यामर्चायां सप्तम्यप्रतेः' साधु और निपुण शब्द के प्रयोग में जिसके प्रति आदर प्रतीत हो उससे सप्तमी होती है। यहाँ 'गुरु' के प्रति आदर प्रतीत हो रहा है। पर 'प्रति' के योग में उक्त विभक्ति नहीं होती। यथा 'साधुर्गुरुं प्रति शिष्य········'।

५. 'प्रसितोत्सुकाभ्यां तृतीया च' प्रसित और उत्सुक के प्रयोग में जिस के लिये उत्सुकता हो उससे तृतीया और सप्तमी विभक्ति होती है। यहाँ देशकी स्वतन्त्रता के लिए उत्सुकता है। अतः वहाँ विकल्प से सप्तमी हो गई।

१ पुरा धनुर्विद्यानिपुणा योजनेन वेध्यं विध्यन्ति स्म।	१ पुरा धनुर्विद्यानिपुणा योजने योजनाद्वा वेध्यं विध्यन्ति स्म।

इति कारकाधिकारः।

[२] अथ आत्मनेपदाधिकारः

२ बोधं बाधन्ती तृष्णा जगति सर्वानाकुलयति।	२ बोधं बाधमाना तृष्णा जगति सर्वानाकुलयति।
३ सति दैवविपर्यये महान्तोऽपि क्लेशं सहन्ति।	३ सति दैवविपर्यये महान्तोऽपि क्लेशं सहन्ते।
४ विपणिं निविशन्तो जनाः स्वोपयोगिवस्तूनि परिक्रीणन्ति।	४ विपणिं निविशमाना जनाः स्वोपयोगिवस्तूनि परिक्रीणते।
५ भीष्मः स्वभुजपञ्जररक्षितान् पराजयन्तं पार्थं सगौरवं प्रैक्षीत्।	५ भीष्मः स्वभुजपञ्जररक्षितान् पराजयमानं पार्थं सगौरवं प्रैक्षिष्ट।
६ उपवने परिक्रीडत, रम्याणि फलानि आदत्त इति भरद्वाजो भरतमामन्त्रयामास।	६ उपवने परिक्रीडध्वम्, रम्याणि फलानि आदद्ध्वम् इति भरद्वाजो भरतमामन्त्रयामास।

---

१. 'सप्तमीपञ्चम्यौ कारकमध्ये' दो शक्तियों के मध्य में वर्तमान काल और मार्गवाची शब्द से सप्तमी अथवा पञ्चमी विभक्ति होती है। इस वाक्य में कर्ता और कर्म में रहने वाली शक्तियों के मध्य में मार्गवाचक शब्द योजन है।

२. 'अनुदात्तङित आत्मनेपदम्' अनुदात्तेत् और ङित् धातु से आत्मनेपद होता है। यहाँ 'बाध' धातु अनुदात्तेत् है। ३. 'सह' धातु भी अनुदात्तेत् है अतः—पूर्वसूत्र से ही यहाँ आत्मनेपद होता है।

४. 'नेर्विशः' नि पूर्वक 'विश्' धातु से आत्मनेपद ही होता है। 'परिव्यवेभ्यः क्रियः' परि, वि, अवपूर्वक 'क्री' धातु से आत्मनेपद ही होता है।

५. 'विपराभ्यां जेः' वि, परापूर्वक 'जि' धातु से आत्मनेपद होता है। 'ईक्ष' धातु भी अनुदात्तेत् होने से पूर्वसंज्ञा को प्राप्त करता है। ६. 'क्रीडोऽनुसम्परिभ्यश्च' अनु, सम्, परि और आङ्पूर्वक 'क्रीड्' धातु से आत्मनेपद होता है। 'आङो दोनास्यविहरणे' यदि किसी वस्तु का फैलाना अर्थ न हो तो आङ्पूर्वक दा धातु के प्रयोग में आत्मनेपद होता है। यदि

१ धर्माधिकारी, अभियुक्तं निखिलवृत्तमापृच्छत् ।	१ धर्माधिकारी, अभियुक्तं निखिलवृत्तमापृच्छत ।
२ धीमद्भिः स्वीकृतं कृत्यं न कदापि संस्थास्यति ।	२ धीमद्भिः स्वीकृतं कृत्यं न कदापि संस्थास्यते ।
३ बहवो जना लाभाशयाऽपहर्तृभ्य एव तिष्ठन्ति ।	३ बहवो जना लाभाशयाऽपहर्तृभ्य एव तिष्ठन्ते ।
४ लोकहितायोत्तिष्ठतो महतः को न बहु मन्यते ।	४ लोकहितायोत्तिष्ठमानान् महतः को न बहु मन्यते ।
५ ब्राह्मणास्त्रिकालं सूर्यमुपतिष्ठन्ति ।	५ ब्राह्मणास्त्रिकालं सूर्यमुपतिष्ठन्ते ।
६ कथमकाल एव भवन्त उपातिष्ठन् ।	६ कथमकाल एव भवन्त उपातिष्ठन्त ।
७ आलातैराघ्नन्निवातपस्तीव्रमुत्तपति ।	७ आलातैराघ्नान इवातपस्तीव्रमुत्तपते ।

फैलाना अर्थ हो तो परस्मैपद होता है जैसे 'स्फोटकं व्याददाति' फैलाने में भी यदि दूसरे का अङ्ग कर्म हो तो आत्मनेपद ही होता है। जैसे—पतितशर्करं बालस्य चक्षुर्व्याददत्ते। १. 'आङि नुप्रच्छ्योः' आङ्पूर्वक नु और प्रच्छ धातु के प्रयोग में आत्मनेपद होता है। २. 'समवप्रविभ्यः स्थः' सम्, अव, प्र और विपूर्वक 'स्था' धातु से आत्मनेपद होता है। यहाँ सम् पूर्वक स्था धातु है।

३. 'प्रकाशनस्थेयाख्ययोश्च' अभिप्रायप्रकाशन तथा निर्णायक मान कर सहारा लेने अर्थ में 'स्था' धातु से आत्मनेपद होता है। यहाँ 'अभिप्रायं प्रकाशयन्ति' यह अर्थ प्रतीत हो रहा है।

४. 'उदोऽनूर्ध्वकर्मणि' ऊपर उठने से अन्य अर्थ में 'उत्' पूर्वक स्था धातुसे आत्मनेपद होता है। यहाँ ऊपर उठने से भिन्न तत्परतारूप अर्थ है।

५. *'उपाद्देवपूजासङ्गतिकरणमित्रकरणपथिष्विति वाच्यम्' देवपूजन, मिलना, मित्र बनाना और मार्गकर्तृक प्राप्ति में उपपूर्वक 'स्था' धातुसे आत्मनेपद होता है। यहाँ देवपूजन है।

६. 'अकर्मकाच्च' अकर्मकत्व की विवक्षा में उपपूर्वक स्था धातुसे पूर्ववत् प्रत्यय होते हैं। यहाँ किसी कर्म की विवक्षा नहीं है।

७. 'आङो यमहनः' अकर्मक अथवा स्वाङ्गकर्मक यम् तथा हन्धातु

१ मित्राणि परस्परं सङ्गच्छन्ति।	१ मित्राणि परस्परं सङ्गच्छन्ते।
२ अष्टादशपुराणनिर्मातारं व्यासं को न संवित्ते।	२ अष्टादशपुराणनिर्मातारं व्यासं को न संवेत्ति।
३ भक्त्योपह्वयन्तं रामं जामदग्न्य आह्वयत्।	३ भक्त्योपह्वयमानं रामं जामदग्न्य आह्वयत।
४ पुरा भूपतय एकैकं दीनं प्रति सहस्रं लक्षञ्च प्राकार्षुः।	४ पुरा भूपतय एकैकं दीनं प्रति सहस्रं लक्षञ्च प्राकुर्षत।
५ द्विपोऽधिकुर्वन्तस्ते स्वरानुच्चैर्व्यकुर्वन्।	५ द्विषोऽधिकुर्वाणास्ते स्वरानुच्चैर्व्यकुर्वत।

यदि आङ् उपसर्गपूर्वक हो तो आत्मनेपद होता है। 'आलातैराघ्नान इव' यहाँ अकर्मकत्व की विवक्षा है। 'उत्तपते' यहाँ 'उद्विभ्यां तपः' उद् और वि पूर्वक अकर्मक तप धातु से आत्मनेपद होता है।

१. 'समो गम्यृच्छिभ्याम्' अकर्मकत्व की विवक्षा में सम् पूर्वक गम् और ऋच्छ धातु से आत्मनेपद होता है। यहाँ किसी कर्म की विवक्षा नहीं है।

२. *'विदिप्रच्छिस्वरतीनामुपसङ्ख्यानम्' अकर्मक विद्, प्रच्छ, स्वृ धातुओं से आत्मनेपद होता है। पर यहां 'व्यास' कर्म है अतः परस्मैपद ही हुआ।

३. 'निसमुपविभ्यो ह्वः' नि, सम्, उप तथा वि पूर्वक 'ह्वेञ्' धातु से आत्मनेपद होता है। 'स्पर्धायामाङः' ललकारने अर्थ में आङ्पूर्वक ह्वेञ्से पूर्वकार्य होता है।

४. 'गन्धनावक्षेपणसेवनसाहसिक्यप्रतियत्नप्रकथनोपयोगेषु कृञः' हिंसा, डराना, सेवा करना, साहस करना, दूसरे का गुण ग्रहण करना, कथन और उपयोगमें 'कृञ्' से आत्मनेपद होता है। इस वाक्य में धर्मार्थ उपयोग है।

५. 'अधेः प्रसहने' क्षमा और तिरस्कार अर्थ में अधि पूर्वक 'कृञ्' धातु से आत्मनेपद होता है। यहाँ शत्रुओं का तिरस्कार अर्थ प्रतीत होता है।

'वेः शब्दकर्मणः' यदि शब्द कर्म हो तो विपूर्वक 'कृञ्' से आत्मनेपद होता है। यहाँ शब्द कर्म है, अतः 'व्यकुर्वत' में आत्मनेपद हुआ।

१ अस्त्राण्युन्नयन्तो भटाः परस्परं विकुर्वन्ति ।	१ अस्त्राण्युन्नयमाना भटाः परस्परं विकुर्वते ।
२ कृत्यवर्त्मनि क्रामन्तो मनस्विनः सर्वातिरिक्तपदं लब्धुमुपक्रामन्ति ।	२ कृत्यवर्त्मनि क्रममाणा मनस्विनः सर्वातिरिक्तपदं लब्धुमुपक्रमन्ते ।
३ शिवराजसैनिका यवनसेनायां निर्भयं व्याक्रमन् ।	३ शिवराजसैनिका यवनसेनायां निर्भयं व्याक्रमन्त ।
४ स्वं नैसर्गिकक्रौर्यमपजानन्तोऽपि नीचाः सुतरां लक्षिता भवन्ति ।	४ स्वं नैसर्गिकक्रौर्यमपजानाना अपि नीचाः सुतरां लक्षिता भवन्ति ।
५ पार्थाः शत्रूनुन्मूलयितुं सदसि प्रत्यज्ञासिषुः ।	५ पार्थाः शत्रूनुन्मूलयितुं सदसि प्रत्यज्ञासत ।
६ विकलमानसं भरतं रामो बह्ववादीत् ।	६ विकलमानसं भरतं रामो बह्ववदिष्ट ।

१, 'सम्माननोत्सञ्जनाचार्यकरणज्ञानभृतिविगणनव्ययेषु नियः' आदर, उठाना, आचार्य करना, ज्ञान, भृत्य रखना, ऋण से मुक्त होना और व्यय अर्थ में 'नी' धातु से आत्मनेपद होता है। यहाँ उन्नयन का अर्थ उठाना है।

'अकर्मकाच्च' अकर्मकत्व की विवक्षा में विपूर्वक 'कृञ्' धातु से आत्मनेपद होता है। यहाँ 'अस्त्र उठाते हुए योधा, परस्पर विकृत हो रहे हैं' यह अर्थ है। अतः अकर्मक होने से आत्मनेपद हो गया।

२. 'वृत्तिसर्गतायनेषु क्रमः' निर्बाध जाना, उत्साह और वृद्धि अर्थ में 'क्रम्' धातु से 'आत्मनेपद' होता है। यहाँ उत्साह अर्थ है। अतः 'क्रम्' धातु से आत्मनेपद हुआ।

'उपपराभ्याम्' पूर्वकथित अर्थ में, उप और परापूर्वक 'क्रम्' धातु से आत्मनेपद होता है। ३. 'वेः पादविहरणे' विपूर्वक 'क्रम्' धातु से पैर उछालने अर्थ में आत्मनेपद होता है। ४. 'अपह्नवे ज्ञः' छिपाने अर्थ में 'ज्ञा' धातु से आत्मनेपद होता है। यहाँ नीच अपनी क्रूरता को छिपा रहे हैं।

५. 'सम्प्रतिभ्यामनाध्याने' मानस व्यापार से अतिरिक्त व्यापार में सम्प्रतिपूर्वक 'ज्ञा' धातु से आत्मनेपद होता है। यहाँ वाग्व्यापार है। ६. 'भासनोपसम्भाषाज्ञानयत्नविमत्युपमन्त्रणेषु वदः' प्रकाशयुक्त, ढाढस देना, ज्ञान, प्रयत्न,

१ यज्ञकर्मणि समवेताः कर्मठाः पूर्वं स्वस्तिपाठं सम्प्रवदन्ति ।	१ यज्ञकर्मणि समवेताः कर्मठाः पूर्वं स्वस्तिपाठं सम्प्रवदन्ते ।
२ मांसशोणितमवगिरन्तो जनाः सन्मार्गमुच्चरन्ति ।	२ मांसशोणितमवगिरमाणा जनाः सन्मार्गमुच्चरन्ते ।
३ विमानैः सञ्चरन्त्यो देव्यो युधि स्वभावविवल्लभानैक्षिषुः ।	३ विमानैः सञ्चरमाणा देव्यो युधि स्वभावविवल्लभानैक्षिषत ।
४ जयचन्दमवधीरयन् पृथ्वीराजः संयुक्तामुपायच्छत् ।	४ जयचन्द्रमवधीरयन् पृथ्वीराजः संयुक्तामुपायच्छत ।
५ शुश्रूषतश्छात्रान् गुरवः स्वहृदयमपि अर्पयन्ति ।	५ शुश्रूषमाणान् छात्रान् गुरवः स्वहृदयमप्यर्पयन्ति ।
६ लोकप्रवृत्तिमाशुश्रूषवश्चरा गूढं चरन्ति ।	६ लोकप्रवृत्तिमाशुश्रूषमाणाश्चरा गूढं चरन्ति ।
७ सभामध्यमध्यासिसिषन्तं द्रोणं द्रुपदो बह्वतर्जयत् ।	७ सभामध्यमध्यासिसिषमाणं द्रोणं द्रुपदो बह्वतर्जयत ।

विरोध और प्रार्थना अर्थमें 'वद' धातु से आत्मनेपद होता है । यहाँ ढाढ़स देना अर्थ हैं । १. **'व्यक्तवाचां समुच्चारणे'** मिलकर बहुत से मनुष्यों के उच्चारणमें 'वद्' धातुसे आत्मनेपद होता है । २. **'अवाद् ग्रः'** अवपूर्वक 'गृ' धातु से आत्मनेपद होता है । **'उदश्चरः सकर्मकात्'** सकर्मक उद्पूर्वक चर धातु से आत्मनेपद होता है । यहाँ सन्मार्ग कर्म है । ३. **'समस्तृतीयायुक्तात्'** तृतीयान्त युक्त होने पर सम्पूर्वक चर धातु से आत्मनेपद होता है । यहाँ तृतीयान्त विमान है ।

४. **'उपाद्यमः स्वीकरणे'** स्वीकार करने के अर्थ में उपपूर्वक यम् धातु से आत्मनेपद होता है । ५. **'ज्ञाश्रुस्मृदृशां सनः'** सन्नन्त ज्ञा, श्रु, स्मृ और दृश् धातु से आत्मनेपद होता है । यहाँ सन्नन्त 'श्रु' धातु है ।

६. **'प्रत्याङ्भ्यां श्रुवः'** प्रति, आङ्पूर्वक 'श्रु' धातु से आत्मनेपद होता है । ७. **'पूर्ववत्सनः'** सन्नन्त धातु यदि आत्मनेपद रहे तो सन्नन्तावस्था में भी उससे आत्मनेपद होता है । 'आस्' धातु आत्मनेपदी है अतः सन्नन्तावस्था में भी आत्मनेपद हुआ ।

१ उत्तेजकवाक्यानि प्रयुञ्जन्तो वीराः शस्त्राणि समक्ष्णुवन् ।	१ उत्तेजकवाक्यानि प्रयुञ्जाना वीराः शस्त्राणि समक्ष्णुवन्त ।
२ अग्नौ प्रास्तं हविर्देवाः पर्याप्तं भुञ्जन्ति ।	२ अग्नौ प्रास्तं हविर्देवाः पर्याप्तं भुञ्जते ।
३ आवल्गिनः कातरान् भीषयन्ति ।	३ आवल्गिनः कातरान् भीषयन्ते ।
४ शठा अनुनयं प्रदर्श्य सरलचित्तान् गर्धयन्ति ।	४ शठा अनुनयं प्रदर्श्य सरलचित्तान् गर्धयन्ते ।
५ समयनियोगात् पण्डितानपि बालिशा अपलापयन्ति ।	५ समयनियोगात् पण्डितानपि बालिशा अपलापयन्ते ।
६ कुनृपतयः 'रक्षकोऽहं, रक्षकोऽहं' मिथ्या घोषणां कारयन्ति ।	६ कुनृपतयः 'रक्षकोऽहं रक्षकोऽहं' मिथ्या घोषणां कारयन्ते ।
७ मिथ्यास्तावकाः प्रियस्तुतेः सम्पदमायच्छन्ति ।	७ मिथ्यास्तावकाः प्रियस्तुतेः सम्पदमायच्छन्ते ।

इत्यात्मनेपदाधिकारः ।

---

१. 'प्रोपाभ्यां युजेरयज्ञपात्रेषु' यज्ञपात्र प्रयोग से अतिरिक्त स्थलमें प्र, उपपूर्वक युज् धातु से आत्मनेपद होता है । 'समः क्ष्णुवः' सम् पूर्वक 'क्ष्णु' धातु से आत्मनेपद होता है । २. 'भुजोऽनवने' पालन से अतिरिक्त, अर्थात् खाने अर्थ में 'भुज' धातु से आत्मनेपद होता है। रक्षण में परस्मैपद ही होता है। जैसे, 'राष्ट्रं भुनक्ति' पालयतीत्यर्थः। ३. 'भीस्म्योर्हेतुभये' ण्यन्त भी तथा स्मि धातु से आत्मनेपद होता है । यदि हेतु से भीति और स्मय हो । ४. 'गृधिवञ्च्योः प्रलम्भने' धोखा देने अर्थ में ण्यन्त गृध् और वञ्च् धातुसे आत्मनेपद होता है । ५. 'लियः सम्माननशालीनीकरणयोश्च' पूजा, तिरस्कार और धोखा देने अर्थ में ण्यन्त 'ली' धातुसे आत्मनेपद होता है। यहाँ तिरस्कार करना है। ६. 'मिथ्योपपदात्कृञोऽभ्यासे' बारबार आवृत्ति में मिथ्यापूर्वक 'कृञ्' धातुसे आत्मनेपद होता है । ७. 'समुदाङ्भ्यो यमोऽग्रन्थे' ग्रन्थ के अतिरिक्त वस्तु यदि कर्म हो तो सम् , उद् और आङ् पूर्वक यम् धातु से आत्मनेपद होता है । यहाँ ग्रन्थ से अतिरिक्त 'सम्पत्' कर्म है ।

[३] अथ परस्मैपदाधिकारः

१ प्रत्यूहान् पराकुर्वाणा मनस्विनः कार्यपारं गच्छन्ति ।	१ प्रत्यूहान् पराकुर्वन्तो मनस्विनः कार्यपारं गच्छन्ति ।
२ महान्तः स्वगाम्भीर्येण समुद्रमपि प्रतिक्षिपन्ते ।	२ महान्तः स्वगाम्भीर्येण समुद्रमपि प्रतिक्षिपन्ति ।
३ विरक्ता विपत्तावपि मोदं प्रवहन्ते ।	३ विरक्ता विपत्तावपि मोदं प्रवहन्ति ।
४ रामाय परिमृष्यमाणो रावणः सीतां बहु प्रालोभयत् ।	४ रामाय परिमृष्यन् रावणः सीतां बहु प्रालोभयत् ।
५ संग्रामे पार्थपराक्रममालोक्य शिवः क्षणमारमत ।	५ संग्रामे पार्थपराक्रममालोक्य शिवः क्षणमारमत् ।
६ समवेतान् बान्धवानेवावलोक्य पार्थो विग्रहादुपारंस्त ।	६ समवेतान् बान्धवानेवावलोक्य पार्थो विग्रहादुपारंसीत् ।
७ ब्राह्मे मुहूर्त्ते गुरुश्छात्रान् विबोधयते ।	७ ब्राह्मे मुहूर्ते गुरुश्छात्रान् विबोधयति ।
८ जनाः श्राद्धे भिक्षुकान् भोजयन्ते ।	८ जनाः श्राद्धे भिक्षुकान् भोजयन्ति ।

---

१. 'अनुपराभ्यां कृञः' अनु तथा परा पूर्वक 'कृञ्' धातु से परस्मैपद होता है। यहाँ परा पूर्वक कृञ् धातु है। अतः शतृप्रत्यय हुआ।

२. 'अभिप्रत्यतिभ्यः क्षिपः' अभि, प्रति, अति पूर्वक क्षिप धातुसे परस्मैपद होता है। ३. 'प्राद्वहः' प्रपूर्वक 'वह्' धातुसे परस्मैपद होता है। ४. 'परेर्मृषः' परिपूर्वक दिवादि 'मृष्' धातु से परस्मैपद होता है। 'रामाय' 'क्रुधद्रुहेर्ष्यासूयार्थानां यं प्रति कोपः' से असूया अर्थ में चतुर्थी हो गई। ५. 'व्याङ्परिभ्यो रमः' वि, आङ् परि पूर्वक रम् धातुसे परस्मैपद होता है। ६. 'उपाच्च' उपउपसर्गपूर्वक 'रम्' धातुसे परस्मैपद होता है। ७. 'बुधयुधनशजनेङ्पुद्रुस्रुभ्यो णेः' णिजन्त बुध्, युध्, नश्, जन्, इङ्, प्रु, द्रु, स्रु, धातु से परस्मैपद होता है। यहाँ णिजन्त बुध् धातु है अतः परस्मैपद हुआ।

८. 'निगरणचलनार्थेभ्यश्च' णिजन्त भक्षणार्थ और चलनार्थ धातुओं से परस्मैपद होता है। यहाँ णिजन्त भक्षणार्थ भुज् धातु है। अतः परस्मैपद हुआ।

१ विकलान् राक्षसान् जीवयमान इवेन्द्रजिज्जगर्ज । — १ विकलान् राक्षसान् जीवयन्निवेन्द्रजिज्जगर्ज ।

२ बाणवर्षेण रिपून् परिमोहयन्नजः शङ्खं दध्वान । — २ बाणवर्षेण रिपून् परिमोहयमाणोऽजः शङ्खं दध्वान ।

इति परस्मैपदाधिकारः ।

[४] अथ भावकर्माधिकारः

३ प्रमादिनां सम्पद्भिरपवादभीताभिरिव विलीयन्ते । — ३ प्रमादिनां सम्पद्भिरपवादभीताभिरिव विलीयते ।

४ निशि नक्षत्रैरधिकं दीप्यन्ते । — ४ निशि नक्षत्रैरधिकं दीप्यते ।

५ अतिपरिक्लान्तेन मयाऽऽदिवसमशायिषि । — ५ अतिपरिक्लान्तेन मयाऽऽदिवसमशायि ।

६ याचकैर्नृपतिं धनानि याच्यन्ते । — ६ याचकैर्नृपतिर्धनानि याच्यते ।

७ कृषकैरन्नराशिं गृहा उह्यन्ते । — ७ कृषकैरन्नराशिर्गृहानुह्यते ।

---

१. 'अणावकर्मकाच्चित्तवत्कर्तृकात्' जिन धातुओं की अण्यन्तावस्था में कोई चेतन कर्ता हो और वे धातु अकर्मक हों तो णिजन्त होने पर उनसे परस्मैपद होता है । (यहाँ जीव धातु अकर्मक है, पूर्व कर्ता राक्षस चेतन है) २. 'न पादम्याङ्यमाङ्यसपरिमुहरुचिनृतिवदवसः' पा, दम् , आङ् पूर्वक यम् , आङ् पूर्वक यस् , परिपूर्वक मुह , रुच् , नृत , वद् , और वस् धातु यदि णिजन्त हों तो परस्मैपद नहीं होता । यहाँ परिपूर्वक णिजन्त मुह् धातु है अतः परस्मैपद न होकर आत्मनेपद हुआ ।

३. अकर्मक धातु से क्रिया अर्थ में लकार होते हैं । द्रव्य न होने से क्रिया में द्विवचनादि नहीं होते । अतः स्वाभाविक एकवचन होता है । ४. इसमें भी पूर्वोक्त प्रकार से एकवचन ही होना चाहिये । ५. क्रिया का युष्मद् और अस्मद् के साथ सामानाधिकरण्य न होने से अकर्मक धातु से प्रथम पुरुष ही होता है । ६. 'गौणे कर्मणि दुह्यादेः प्रधाने नी, हृ, कृष्वहाम्' दुहादि एकादश धातुओं से गौणकर्म में प्रत्यय होता है तथा नी, हृ, कृष् और वह् धातुओं से प्रधान कर्ममें प्रत्यय होता है । 'याच्' धातु से गौणकर्ममें प्रत्यय होनेसे गौणकर्म 'नृपतिम्' उक्त होनेसे प्रथमा विभक्ति हो गई । ७. 'नी' प्रभृति चार धातुओं से प्रधान कर्म में प्रत्यय होने से अन्नराशि में प्रथमा विभक्ति हुई ।

[५] अथ लकारार्थाधिकारः

१ स्मरन्ति भवन्तो यत्तीर्थयात्रायां भवद्भिरस्माकं सङ्गतिरभवत् ? ।	१ स्मरन्ति भवन्तो यत्तीर्थयात्रायां भवद्भिरस्माकं सङ्गतिर्भविष्यति ।
२ बुध्यसे ? यदुपवने विहरिष्यामः ।	२ बुध्यसे यदुपवने व्यहराम ।
३ भक्तो देवानां पुरतः स्तुतिमेव शश्वदकार्षीत् ।	३ भक्तो देवानां पुरतः स्तुतिमेव शश्वदकरोत्, चकार वा ।
४ भवानचेतीत् किमिति पथिकः परिचितमन्वयुङ्क्त ।	४ भवानचेतत् किमिति पथिकः परिचितमन्वयुङ्क्त ।
५ स्वामी भृत्यं महार्घं वचनं जगाद स्म ।	५ स्वामी भृत्यं महार्घं वचनं गदति स्म ।
६ चमूपतिना पृष्टः सैनिको ननु प्राहार्षमित्युत्तरितवान् ।	६ चमूपतिना पृष्टः सैनिको ननु प्रहरामीत्युत्तरितवान् ।
७ अधिकरणे पृष्टोऽयं तथ्यं यावत् कथयिष्यति ।	७ अधिकरणे पृष्टोऽयं तथ्यं यावत् कथयति ।

---

१. अभिज्ञावचने लृट्' स्मृतिबोधक क्रियाके पास रहने पर अनद्यन भूत में धातुसे 'लृट्' लकार होता है । 'यहाँ 'स्मरन्ति' के सान्निध्यसे अनद्यतन भूतार्थ में लृट् लकार हुआ ।

२. 'न यदि' 'यद्' शब्द के योगमें पूर्व सूत्रकी प्रवृत्ति नहीं होती है। अतः लङ् लकार ही हुआ ।

३. 'हशश्वतोर्लङ् च' ह, और शश्वत् अव्ययके योगमें लङ् और लिट् लकार होता है । ४. प्रश्ने चासन्नकाले' प्रश्नका काल यदि समीप हो तो लङ् और लिट् होता है । यहाँ प्रश्न का काल समीप है अतः लङ् लकार हुआ ।

५. 'लटः स्मे' लिट् लकार के विषयमें 'स्म' के योगमें लट् लकार होता है । ६. ननौ पृष्टप्रतिवचने' यदि प्रश्नका उत्तर हो तो 'ननु' के प्रयोगमें भूतकालके विषयमें लट् लकार होता है । ७. 'यावत्पुरानिपातयोर्लट्' निश्चयार्थद्योतक, यावत् और पुरा अव्यय के योगमें भविष्यदर्थ में 'लट्' होता है । यहाँ निश्चयार्थद्योतक यावत् का प्रयोग है अतः लट् लकार हुआ ।

INSTITUTE OF ADVANCED
Acc. No. 6566

१ भृत्यश्चेत् यायात् , आशंसे तत्कृत्यं समापयिष्यामि ।	१ भृत्यश्चेत् यायात् , आशंसे तत्कृत्यं समापयेयम् ।
२ भोजराजो यावज्जीवनं कृतिनः सदकरोत् ।	२ भोजराजो यावज्जीवनं कृतिनः सदकार्षीत ।
३ तदा बहुधा निषिद्धोऽपि चौर्यमाचरः ।	३ तदा बहुधा निषिद्धोऽपि चौर्यमाचरसि ।
४ न मर्षये यद्भवन्तो लोभाभिभूता धर्मं परित्यजन्ति ।	४ न मर्षये, यद्भवन्तो लोभाभिभूता धर्मं परित्यजेयुः, परित्यक्ष्यन्ति वा ।
५ अस्ति, त्वं नीचैः सङ्गतिं विद्धासि ।	५ अस्ति त्वं नीचैः सङ्गतिं विधास्यसि ।
६ न सम्भावयामि, यदा तथाविधाः सज्जनेभ्योऽभिद्रोह्यन्ति ।	६ न सम्भावयामि, यदा तथाविधाः सज्जनेभ्योऽभिद्रुह्येयुः ।

१. 'आशंसावचने लिङ्' आशंसावाचक पद यदि पासमें हो तो भविष्यत् अर्थमें 'लिङ्' लकार होता है । यहाँ 'आशंसे' पदके सान्निध्यमें भविष्यदर्थमें 'समापयेयम्' यहां पर लिङ् लकार हुआ ।

२. 'नानद्यतनवत्क्रियाप्रबन्धसामीप्ययोः' क्रियाकी निरन्तरता तथा समीपता प्रतीत हो तो लङ् तथा लुट् लकार नहीं होते प्रत्युत, लुङ् और लृट् होते हैं । यहाँ सत्कारकी निरन्तरता प्रतीत हो रह है अतः लुङ् लकार हुआ ।

३. 'गर्हायां लडपिजात्वोः' निन्दा अर्थकी प्रतीतिमें, भूत, भविष्यत तथा वर्तमान, तीनों कालमें अपि और जातु अव्ययके प्रयोगमें 'लट्' लकार होता है । यहाँ 'अपि' के प्रयोगमें भूतार्थमें लट् हुआ ।

४. 'अनवक्लृप्त्यमर्षयोरकिंवृत्तेऽपि' असम्भावना तथा अमर्ष (असहन) यदि उपपद हों तो लिङ् और लृट् लकार होता है । यहाँ पर 'अमर्ष' उपपद है ।

५. 'किंकिलास्त्यर्थेषु लृट्' निन्दार्थ की अभिव्यक्तिमें, असम्भावना, अमर्ष, किं, किल तथा अस्त्यर्थक पदों की समीपतामें 'लृट्' लकार होता है । यहाँ 'अस्ति' के सान्निध्यसे लृट् हुआ ।

६. 'जातुयदोर्लिङ्' (*यदायद्योरुपसङ्ख्यानम्) जातु, यद् , यदा, यदि के पास रहने पर 'लिङ्' लकार होता है । यहाँ 'यदा' का सान्निध्य है अतः लिङ् लकार हुआ ।

१ यच्च यूयं चाण्डालगृहे भोक्ष्यध्वे न श्रद्दधे ।	१ यच्च यूयं चाण्डालगृहे भुञ्जीध्वं, न श्रद्दधे।
२ यत्र भवन्तश्चाण्डालं स्पृशन्ति, असाधुसेवितोऽयं पन्थाः ।	२ यत्र भवन्तश्चाण्डालं स्पृशेयुरसाधुसेवितोऽयं पन्थाः ।
३ आश्चर्यमेतत् , यच्च भवन्तश्चाण्डालं स्पृशन्ति ।	३ आश्चर्यमेतत् यच्च भवन्तश्चाण्डालं स्पृशेयुः ।
४ चित्रं, पङ्गुरपि जातु मुक्तिमार्गं प्रापत् ।	४ चित्रं, पङ्गुरपि जातु मुक्तिमार्गं प्राप्स्यति।
५ उत, अपि व्यपगतकामः स परिव्रजिष्यति ।	५ उत, अपि व्यपगतकामः स परिव्रजेत्।
६ यूयं तत्कार्यं सत्वरं सम्पादयत, अयं मे मनोरथः ।	६ यूयं तत्कार्यं सत्वरं सम्पादयेत, अयं मे मनोरथः ।
७ वाञ्छामि भवानद्यात्रैव स्थास्यति।	७ वाञ्छामि भवानद्यात्रैव तिष्ठेत्, तिष्ठतु वा
८ छात्रोऽभिलष्यति यदान्वीक्षिकीं पठिष्यामि ।	८ छात्रोऽभिलष्यति यदान्वीक्षिकीं पठेयम् ।

१. 'यच्चयत्रयोः' असम्भावना तथा अमर्षमें, यच्च और यत्र उपपद हो तो 'लिङ्' लकार होता है । २. 'गर्हायाञ्च' निन्दार्थमें यच्च तथा यत्र उपपद हो तो लिङ् ही होता है । यहाँ निन्दार्थमें यत्र उपपद है । ३. 'चित्रीकरणे च' आश्चर्य में भी यच्च तथा यत्रके प्रयोगमें लिङ् होता है । ४. 'शेषे लृडयदौ' यच्च, यत्र से अन्य अव्ययके उपपद रहने पर आश्चर्य यदि प्रतीत हो तो लृट् लकार होता है । पर 'यदि' के प्रयोगमें नहीं होता । ५. 'उताप्योः समर्थयोर्लिङ्' यदि उत, अपि का समान अर्थ हो तो इनके प्रयोगमें लिङ् लकार होता है । ६. कामप्रवेदनेऽकच्चिति' अभिलाषा प्रकट करनेमें 'लिङ्' लकार होता है, पर 'कच्चित्' के प्रयोगमें नहीं । ७. 'इच्छार्थेषु लिङ्लोटौ' इच्छार्थक धातु उपपद हो तो लिङ् और लोट् होता है । ८. 'लिङ् च' प्रकृतक्रियाका कर्ता यदि इच्छाका भी कर्ता हो तो लिङ् लकार होता है । यहाँ पठत तथा अभिलाषा क्रियाका कर्ता छात्र है अतः 'पठेयम्' यहाँ लिङ् लकार हुआ ।

[६] अथ स्त्रीप्रत्ययाधिकारः

१ सा शूद्रा स्वपतिं भक्त्या सेवते।	१ सा शूद्री भक्त्या स्वपतिं सेवते।
२ त्रिहायना वडवाऽरोढुमर्हा भवति।	२ त्रिहायणी वडवाऽऽरोढुमर्हा भवति।
३ वीरपतिर्मनस्विनी युधि हते पत्यौ तमनुसरति।	३ वीरपत्नी मनस्विनी युधि हते पत्यौ तमनुसरति।
४ अकेश्यो नार्यः स्वल्पमपि न शोभन्ते।	४ अकेशा नार्यः स्वल्पमपि न शोभन्ते।
५ आङ्गला वध्वः श्वेतमुखा भारतीयाश्च गौरमुखा भवन्ति।	५ आङ्गला वध्वः श्वेतमुख्यो भारतीयाश्च गौरमुख्यो भवन्ति।
६ करभोरुः पार्वती तपसा क्षीणा कृशोरू जाता।	६ करभोरूः पार्वती तपसा क्षीणा कृशोरुर्जाता।
७ नगरे प्रविशन्तमजं सुनेत्र्यः प्रासादान्निरैक्षिषत।	७ नगरे प्रविशन्तमजं सुनेत्राः प्रासादान्निरैक्षिषत।

---

१. '*शूद्रा चामहत्पूर्वा जातिः' स्त्रीत्वविवक्षामें यदि जाति हो तो शूद्र शब्द से 'टाप्' होता है। यहाँ जाति नहीं है अतः पुंयोगमें ङीप् हुआ। और जाति ही में महत्पूर्वक शूद्र से टाप् नहीं होता। २. 'दामहायनान्ताच्च' संख्या-पूर्वक दामान्त, हायनान्त बहुव्रीहिसे ङीप् होता है। '*त्रिचतुर्भ्यां हायनस्य णत्वं वाच्यम्' त्रि, चतुर् पूर्वक हायनके नकारको णत्व होता है। '*वयो वाचकस्यैव हायनस्य ङीप् णत्वं चेष्यते' अवस्थावाचक ही हायन से ङीप् और णत्व होता है। ३. 'नित्यं सपत्न्यादिषु' सपत्न्यादिमें नित्य ही नुगागम होता है। अतः 'वीरपत्नी' में नुक् का आगम हुआ।

४.'सहनञ्विद्यमानपूर्वाच्च' सह और नञ् विद्यमानपूर्वकको ङीष् नहीं होता। ५.'नखमुखात्संज्ञायाम्' संज्ञामें ही नख, मुखसे ङीप् नहीं होता। यहाँ संज्ञा नहीं है अतः ङीष् हो गया।

६.'ऊरूत्तरपदादौपम्ये' उपमानवाचक पूर्व पद रहने पर ऊरु शब्द से ऊङ् होता है। 'करभोरू' में तो उपमान करभ है। पर 'कृशोरुः' में उपमान न होने से ऊङ् नहीं हुआ। ७.'स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात्' उपसर्जनी-भूत, जिसकी उपधामें संयोग न हो ऐसे जो स्वाङ्ग, तदन्त और अदन्त प्रातिपदिकसे

२ वने कुण्डोधसो गाश्चारयन् नन्दनन्दनो मुदमाप	१ वने कुण्डोध्नीर्गाश्चारयन् नन्दनन्दनो मुदमाप।
२ बहुक्षीरेयं गौः, यतः पञ्चाश्वी।	२ बहुक्षीरेयं गौः, यतः पञ्चाश्वा।

(७) अथ समासाधिकारः

३ रघुः सत्कृत्वा यज्ञान्ते सर्वान् व्यसृजत्।	३ रघुः सत्कृत्य यज्ञान्ते सर्वान् व्यसृजत्।
४ भगवान् भास्करः सायं प्रतीच्यामस्तङ्गत्वा प्रातः पूर्वायां पुनरुदेति।	४ भगवान् भास्करः सायं प्रतीच्यामस्तङ्गत्य प्रातः पूर्वस्यां पुनरुदेति।
५ कचिच्चात्मानं पुरस्कृत्वा कचिच्च तिरोभूत्वा मारीचो रामं दूरमनयत्।	५ कचिच्चात्मानं पुरस्कृत्य कचिच्च तिरोभूय मारीचो रामं दूरमनयत्।
६ अर्जुनः सुभद्रां पाणौकृत्वा परां मुदमाप।	६ अर्जुनः सुभद्रां पाणौकृत्य परां मुदमाप।

पाक्षिक ङीष् होता है। इस स्थलमें नेत्र, संयोगोपधक है अतः ङीष् नहीं हुआ। १. 'ऊधसोऽनङ्' ऊधोऽन्त बहुव्रीहि से स्त्रीत्वविवक्षामें अनङ् आदेश होता है। 'बहुव्रीहेरूधसो ङीष्' ऊधोन्त बहुव्रीहि से ङीष् होता है। २. 'अपरिमाणबिस्ताचितकम्बल्येभ्यो न तद्धितलुकि' अपरिमाणान्त, बिस्त, आचित और कम्बल्यान्त द्विगुसे तद्धित प्रत्ययके लुक् हो जाने पर 'ङीप्' नहीं होता। यहां पञ्चभिरश्वैः क्रीता पञ्चाश्वा सिद्ध होता है।

३. 'आदरानादरयोः सदसती' आदर और अनादर में, सत् और असत् की गति संज्ञा होती है। (कुगतिप्रादयः) कुगति आदि समर्थ के साथ नित्य समस्त होते हैं। ४. 'अस्तञ्च' 'अस्तम्' इस मान्त अव्यय की गति संज्ञा होती है। ५. 'पुरोऽव्ययम्' पुरस् इस अव्यय की गति संज्ञा होती है। तथा (तिरोऽन्तर्धौ) छिपने अर्थ में 'तिरस्' की गति संज्ञा होती है। अतः समास तथा ल्यप् हुआ।

६. 'नित्यं हस्ते पाणावुपयमने' विवाह अर्थ में हस्ते, पाणौ इन सप्तम्य-

१ प्रायो जनन्यः शिशूनुरसिकृत्य शेरते।	१ प्रायो जनन्यः शिशूनुरसिकृत्वा शेरते।
२ पथिका अपररात्रौ समुत्थाय मार्गमाश्रयन्ति।	२ पथिका अपररात्रे समुत्थाय मार्गमाश्रयन्ति।
३ पराहनि वयमितो गन्तास्मः।	३ पराह्णे वयमितो गन्तास्मः।
४ द्व्यहं व्यतीतम् कथमद्यापि दूतो नागतः।	४ द्व्यहो व्यतीतः कथमद्यापि दूतो नागतः।
५ किरीटी बाणच्छायायां खाण्डवं वनं वह्निमभक्षयत्।	५ किरीटी बाणच्छाये खाण्डवं वनं वह्निमभक्षयत्।
६ हनूमान् कुपथि पदमर्पयद्भिः क्षपाटैः परिवृतां राक्षससभां प्रविवेश।	६ हनूमान् कापथे पदमर्पयद्भिः क्षपाटैः परिवृतं राक्षससभं प्रविवेश।

न्तों की गति संज्ञा होती है। १. 'अनत्याधान उरसिमनसी' स्पर्श से अतिरिक्त स्थलमें उरसि तथा मनसि इन सप्तम्यन्तों की गति संज्ञा होती है। यहां स्पर्श है, अतः गति संज्ञा न होने से समास तथा ल्यप् नहीं हुआ।

२. 'अहःसर्वैकदेशसङ्ख्यातपुण्याच्च रात्रेः' अहः, सर्व, एकदेश (पर, अपर, मध्य प्रभृति) संख्यात, पुण्य, संख्या और अव्ययपूर्व रात्रिशब्दसे समासान्त अच् (प्रत्यय) होता है ३. 'अह्नोऽह्न एतेभ्यः' समासान्त प्रत्यय परे और सर्वादि से परे अहन् को अह्न आदेश होता है। 'अह्नोऽदन्तात्' अदन्त पूर्वपद में स्थित रेफ से परे अह्नके नकार को णत्व होता है। ४. 'रात्राह्नाहाः पुंसि' रात्र, अह्न अह, एतदन्त द्वन्द्व तत्पुरुष पुंल्लिङ्ग ही होते हैं। अतः 'द्व्यह' का प्रयोग पुंल्लिङ्ग में ही हुआ।

५. 'छाया बाहुल्ये' छायान्त तत्पुरुषसे नपुंसक लिङ्ग होता है यदि पूर्व पदार्थ में बाहुल्य की प्रतीति हो। यहां बाण में बाहुल्य की प्रतीति हो रही है अतः छायान्त तत्पुरुष से नपुंसक लिङ्ग हुआ।

६. 'का पथ्यक्षयोः' पथि और अक्षसे पूर्व कुत्सित को 'का' होता है। ('सभा राजामनुष्यपूर्वा') सभान्त तत्पुरुष, जिसके पूर्वमें राजपर्याय हो तथा मनुष्य पूर्वपद न हो, नपुंसक होता है। अमनुष्यशब्दसे रक्षः, पिशाच प्रभृति लिये जाते हैं। यहां पूर्व पद राक्षस है अतः नपुंसकलिङ्ग हुआ।

१ चैत्रमैत्रयोरयं विशेषो यच्चैत्रो रसिकभार्यः, सुकेशभार्यश्च मैत्रस्तु पाचकभार्यः ।	१ चैत्रमैत्रयोरयं विशेषो यच्चैत्रो रसिकाभार्यः सुकेशीभार्यश्च, मैत्रस्तु पाचिकाभार्यः ।
२ भूयः प्रवृत्तिमानेतुं दृढसक्थिनं दूतं प्रहितवान् ।	२ भूयः प्रवृत्तिमानेतुं दृढसक्थं दूतं प्रहितवान् ।
३ रामो रणाभिमुखागतं द्विमूर्धानं त्रिमूर्धानञ्च शितशरनिकरेण निहतवान् ।	३ रामो रणाभिमुखागतं द्विमूर्धं त्रिमूर्धञ्च शितशरनिकरेण निहतवान् ।
४ रक्षःसेनासु केऽपि उन्नासिकाः केऽपि विनासिकाः समदृश्यन्त ।	४ रक्षःसेनासु केऽपि उन्नसाः केऽपि विग्राः समदृश्यन्त ।
५ प्रत्यूहे निवारिते श्वो भवान् सुदिवा भाविता ।	५ प्रत्यूहे निवारिते श्वो भवान् सुदिवो भाविता ।
६ दुष्प्रजानां सुमेधानां चिन्तया निरग्नि हृदयं ज्वलति ।	६ दुष्प्रजसां सुमेधसां चिन्तया निरग्नि हृदयं ज्वलति ।
७ गाण्डीवधनुरर्जुनः सोत्साहं तुमुलसङ्गरे प्राविशत् ।	७ गाण्डीवधन्वार्जुनः सोत्साहं तुमुलसङ्गरे प्राविशत् ।

---

१. **'न कोपधायाः'** जिसकी उपधामें ककार हो ऐसा स्त्रीत्वद्योतकशब्द पुंवत् नहीं होता । (स्वाङ्गाच्चेतः) स्वाङ्गवाचकसे परे जो ईकार तदन्त स्त्रीलिङ्ग पुंवत् नहीं होता । अत एव 'सुकेशीभार्यः' यही शुद्ध है । २. **'बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात्षच्'** स्वाङ्गवाची जो सक्थि तथा अक्षिशब्द, तदन्तबहुव्रीहि से षच् होता है । ३. **'द्वित्रिभ्यां ष मूर्ध्नः'** द्वि, त्रि शब्द से परे मूर्धान्त बहुव्रीहि से 'ष' होता है । ४. **'उपसर्गाच्च'** प्रादि से परे नासिकान्त बहुव्रीहिसे 'अच्' होता है । तथा नासिका शब्दको नसादेश होता है । **(वेर्ग्रो वक्तव्यः)** वि उपसर्ग के बाद नासिका को 'ग्र' आदेश होता है । ५. **'सुप्रातसुश्व...'** सुप्रात, सुश्व, सुदिव, शारिकुक्ष, चतुरश्र, एणीपद, अजपद, प्रोष्ठपद, ये शब्द बहुव्रीहि में अच् प्रत्ययान्त निपातित होते हैं । ६. **'नित्यमसिच् प्रजामेधयोः'** नञ्, सु, दुस् से प्रजान्त तथा मेधान्त बहुव्रीहि से 'असिच्' प्रत्यय होता है । ७. **'धनुषश्च'** धनुरन्त बहु-

१ दुर्वृत्तजायं पुरुषं राज्यमपि न सुखयति ।	१ दुर्वृत्तजानिं पुरुषं राज्यमपि न सुखयति ।
२ भरतानुयायिनो भारद्वाजाश्रमे सुगन्धानि पुष्पाणि सुरभिगन्धानि फलानि चोपययुजुः ।	२ भरतानुयायिनो भारद्वाजाश्रमे सुगन्धीनि पुष्पाणि सुरभिगन्धीनि फलानि चोपययुजुः ।
३ मदगन्धं सप्तच्छदमाघ्राय दन्तिनः सञ्चुक्षुभुः ।	३ मदगन्धि सप्तच्छदमाघ्राय दन्तिनः सञ्चुक्षुभुः ।
४ मनुजाः पक्षिणश्च द्विपादाः पशवश्च चतुष्पादा भवन्ति ।	४ मनुजाः पक्षिणश्च द्विपादः पशवश्च चतुष्पादो भवन्ति ।
५ पूर्वं शिशवो द्विदन्ताः पुनश्चतुर्दन्ता भवन्ति ।	५ पूर्वं शिशवो द्विदन्तः पुनश्चतुर्दन्तो भवन्ति ।
६ वर्षत्रयादूर्ध्वं वत्सा विशालककुदा जायन्ते ।	६ वर्षत्रयादूर्ध्वं वत्सा विशालककुदो जायन्ते ।
७ कृतापकारा जना दुर्हृदया भवन्ति ।	७ कृतापकारा जना दुर्हृदो भवन्ति ।
८ पूर्वजन्मपुण्यातिशयेन जनो गुणवद्भ्रातृकः सम्पद्यते ।	८ पूर्वजन्मपुण्यातिशयेन जनो गुणवद्भ्राता सम्पद्यते ।

व्रीहिसे अनङादेश होता है । १. 'जायाया निङ्' जायान्त बहुव्रीहिसे निङादेश होता है । २. 'गन्धस्येदुत्पूतिसुसुरभिभ्यः' उत् , पूति, सु और सुरभिपूर्वक गन्ध शब्द को इकारान्तादेश होता है । ३. 'उपमानाच्च' उपमानवाचक पदसे परे गन्धान्त बहुव्रीहि में इकारान्तादेश होता है । ४. 'संख्यासुपूर्वस्य' संख्यापूर्वक और सुपूर्वक पादशब्दके अन्तका बहुव्रीहि में लोप होता है । अतः द्विपाद् तथा चतुष्पाद् हलन्त हो गया ।

५. 'वयसि दन्तस्य दतृ' अवस्था में संख्या और सुपूर्वक दन्तको बहुव्रीहिमें दतृ आदेश होता है । ६. 'ककुदस्यावस्थायां लोपः' अवस्थामें ककुदशब्दके अन्तका बहुव्रीहिमें लोप होता है । ७. 'सुहृद्दुर्हृदौ मित्राऽमित्रयोः' मित्र और शत्रु अर्थ में सु तथा दुर् पूर्वक हृदय के स्थानमें हृद् निपातित होता है । ८. 'वन्दिते भ्रातुः' आदर अर्थमें भ्रातृशब्दान्त बहुव्रीहिसे 'कप्' नहीं होता ।

१ जलाग्निभ्यां विना न कोऽपि जन्तुः प्राणान् धारयितुं क्षमः ।	१ अग्निजलाभ्यां विना न कोऽपि जन्तुः प्राणान् धारयितुं क्षमः ।
२ नलैलौ सर्वातिशायिसौन्दर्यशालिनावास्ताम् ।	२ ऐलनलौ सर्वातिशायिसौन्दर्यशालिनावास्ताम् ।
३ तडागकूपयोः कूपस्यैव जलं सुस्वादु भवति ।	३ कूपतडागयोः कूपस्यैव जलं सुस्वादु भवति ।
४ शिष्यगुरू युगपदेव मन्त्रमुच्चारयतः ।	४ गुरुशिष्यौ युगपदेव मन्त्रमुच्चारयतः ।
५ निमन्त्रिता अतिथयो हस्तपादौ प्रक्षाल्य स्वं स्वमासनमलञ्चक्रुः ।	५ निमन्त्रिता अतिथयो हस्तपादं प्रक्षाल्य स्वं स्वमासनमलचक्रुः ।
६ अश्वमहिषयोर्नैसर्गिकविरोधात् न क्वापि सह स्थानम् ।	६ अश्वमहिषस्य नैसर्गिकविरोधात् न क्वापि सहस्थानम् ।
७ विनीता बालकाः प्रातः मातृपितरौ प्रणमन्ति ।	७ विनीता बालकाः प्रातर्मातापितरौ प्रणमन्ति ।

१. 'द्वन्द्वे घि' द्वन्द्व समासमें घिसंज्ञक शब्द पूर्व रहते हैं । यहां अग्निशब्द 'घि' संज्ञक है अतः इसका प्रयोग पूर्व में होता है ।

२. 'अजाद्यदन्तम्' जिसके आदिमें अच् हो ऐसे अदन्त शब्द द्वन्द्वमें पूर्व रहते हैं । ऐल शब्द अजादि होने से पूर्व में प्रयुक्त हुआ ।

३. 'अल्पाच्तरम्' जिस शब्दमें अल्प अच् होते हैं वे द्वन्द्वमें पूर्व रहते हैं । ४. '*अभ्यर्हितञ्च' द्वन्द्वसमासमें पूज्यका पूर्व निपात होता है । ५. 'द्वन्द्वश्च प्राणितूर्यसेनाङ्गानाम्' प्राण्यङ्ग, वाद्याङ्ग और सेनाङ्गोंका द्वन्द्व एकवचनान्त होता है । प्राण्यङ्ग होनेसे हस्तपादका द्वन्द्व एकवचनान्त हुआ ।

६. 'येषां च विरोधः शाश्वतिकः' जिनका स्वाभाविक विरोध है उनका द्वन्द्व एकवत् होता है । अश्व तथा महिष का स्वाभाविक विरोध है अतः उनका द्वन्द्व एकवत् हुआ ।

७. 'आनङ् ऋतो द्वन्द्वे' विद्या और योनि सम्बन्ध वाचक जो ऋदन्त, उनके उत्तर पदसे अव्यवहित पूर्व 'आनङ्' होता है । यहां योनि सम्बन्धवाचक ऋदन्त मातृ तथा पितृ शब्द है । अतः पितृ से पूर्व आनङ् हुआ ।

१ नन्दिकेश्वरवीरभद्रौ शिवगणे मुख्यावास्ताम् ।	१ नन्दिकेश्वरावीरभद्रौ शिवगणे मुख्यावास्ताम् ।
२ बलिनिग्रहे वामनपादो दिवःसर्वंसहे व्यानशे ।	२ बलिनिग्रहे वामनपादो द्यावासर्वंसहे व्यानशे ।
३ छत्रोपानहौ गृहीत्वा स देशान्तरं प्रस्थितः ।	३ छत्रोपानहं गृहीत्वा स देशान्तरं प्रस्थितः ।
४ चैत्रो मैत्रोऽहञ्च सार्धमेव गमिष्यामि ।	४ चैत्रो मैत्रोऽहञ्च सार्धमेव गमिष्यामः ।
५ विष्णुमित्रो युवाञ्चाधुनैव गच्छतम् ।	५ विष्णुमित्रो युवाञ्चाधुनैव गच्छत ।
६ शरदि जनपदा रम्यपन्थानोऽवलोक्यन्ते ।	६ शरदि जनपदा रम्यपथा अवलोक्यन्ते ।
७ धनिभिः प्रायः सप्तभूमयोऽष्टभूमयो गृहा रच्यन्ते ।	७ धनिभिः प्रायः सप्तभूमा अष्टभूमा गृहा रच्यन्ते ।

---

१. 'देवताद्वन्द्वे च' यदि देवताओंका द्वन्द्व हो तो उत्तरपदसे अव्यवहित पूर्व आनङ् होता है । नन्दिकेश्वर तथा वीरभद्र ये देवतावाचक हैं ।

२. 'दिवो द्यावा' देवता द्वन्द्वमें उत्तरपदपरे दिवस् को 'द्यावा' होता है ।
३. 'द्वन्द्वाच्चुदषहान्तात्समाहारे' चवर्गान्त, दान्त, षान्त और हान्त द्वन्द्व से समाहार में टच् होता है । यहाँ 'उपानह्' में हान्त द्वन्द्व है ।

४–५. अन्य शब्दों के साथ तदादि के प्रयोगमें त्यदादि के आधार पर क्रियायें होती हैं तथा त्यदादिके सह प्रयोग में पाठक्रमसे परके आधार पर क्रिया होती है । ३. 'ऋक्पूरब्धूःपथामानक्षे' ऋच् , पुर् अप् , धुर् , पथिन् एतदन्तसमास का अन्त्यावयव 'अ' प्रत्यय होता है । यहां पथिन् शब्दान्त समास का अन्त्यावयव 'अ' हुआ । पर चक्रके मध्य में धुरा होती है, तदन्त समासमें 'अ' प्रत्यय नहीं होता । ७. 'कृष्णोदक्पाण्डुसङ्ख्यापूर्वाया भूमेरजिष्यते' कृष्ण, उदक् , पाण्डु और संख्यापूर्वक भूमि शब्दसे अन्त्यावयव अच् होता है । यहां संख्यापूर्वक भूमिशब्द से अन्त्यावयव अच् हो गया ।

१ शौरिर्वाङ्मनसोरगोचरां दिव्यां तनुमर्जुनमदर्शयत् ।	१ शौरिर्वाङ्मनसयोरगोचरां दिव्यां तनु-मर्जुनमदर्शयत् ।
२ स्त्रीपुंसोर्निरतिशयस्नेहेनैव गृह-कृत्यं शोभनं निर्वहति ।	२ स्त्रीपुंसयोर्निरतिशयस्नेहेनैव गृहकृत्यं शोभनं निर्वहति ।
३ पुरा ऋषयो ब्रह्मवर्चसा परोक्ष-मपि वस्त्वध्यक्षयन्ति स्म ।	३ पुरा ऋषयो ब्रह्मवर्चसेन परोक्षमपि वस्त्वध्यक्षयन्ति स्म ।
४ मोहान्धतमसि निमग्ना जना हिताहिते नावेक्षन्ते ।	४ मोहान्धतमसे निमग्ना जना हिताहिते नावेक्षन्ते ।
५ राजानोऽनुरहः प्रधानामात्यैर्म-न्त्रयन्ति ।	५ राजानोऽनुरहसं प्रधानामात्यैर्मन्त्रयन्ति ।
६ सुराजं सर्वा प्रजा सुप्रसन्नाभि-नन्दति ।	६ सुराजानं सर्वा प्रजा सुप्रसन्नाऽभि-नन्दति ।
७ अर्जुनः शिवस्य प्रत्युरसि भुजा-भ्यामताडयत् ।	७ अर्जुनः शिवस्य प्रत्युरसं भुजाभ्याम-ताडयत ।

१-२. 'अचतुरविचतुरसुचतुर...' निम्ननिर्दिष्ट २५ अजन्त निपातित होते हैं। उनमें अचतुर, विचतुर, सुचतुर ये तीन 'बहुव्रीहि' हैं। स्त्रीपुंस, धेन्वनडुह, ऋक्साम, वाङ्मनस, अक्षिभ्रुव, दारगव, ऊर्वष्ठीव, पदष्ठीव, नक्तन्दिव, रात्रिन्दिव और अहर्दिव ये ग्यारह द्वन्द्व निपातित हैं। सरजस अव्ययीभाव है। निःश्रेयस तत्पुरुष ही में निपातित होता है। पुरुषायुष (तत्पुरुष), द्वयायुष, त्र्यायुष (द्विगु), ऋग्यजुष (द्वन्द्व), जातोक्ष, महोक्ष और वृद्धोक्ष (कर्मधारय), उपशुन (अव्ययीभाव), गोष्ठश्व (तत्पुरुष)। यहां अजन्त 'वाङ्मनस तथा स्त्रीपुंस' पदोंका इस सूत्रसे निपातन हुआ।

३. 'ब्रह्महस्तिभ्यां वर्चसः' ब्रह्म, हस्तिसे परे वर्चस् शब्दसे (अच्) प्रत्यय होता है। ४. अवसमन्धेभ्यस्तमसः' अव, सम् , अन्ध शब्द से परे तमस् से (अच्) प्रत्यय होता है। अतः अन्धतमस शब्द अजन्त हुआ।

५. अन्ववतप्ताद्रहसः' अनु, अव और तप्त से परे 'रहस्' से समासान्त 'अच्' प्रत्यय होता है ६. 'न पूजनात्' (स्वतिभ्यामेव) आदरार्थक सु और अति से पर शब्दोंसे समासान्त प्रत्यय नहीं होते। ७. 'प्रतेरुरसः सप्तमीस्थात्'

१ किंसखेभ्यो न कदाप्युपदेशं गृह्णीयात्।	१ किंसखिभ्यो न कदाप्युपदेशं गृह्णीयात्।
२ नीचाः स्वभावतो जगतोऽसखा भवन्ति।	२ नीचाः स्वभावतो जगतोऽसखायो भवन्ति।

(८) अथ समासेऽलुगधिकारः

३ ओजोलब्धमेव राज्यं स्थिरतरं सम्पद्यते।	३ ओजसा लब्धमेव राज्यं स्थिरतरं सम्पद्यते।
४ अनेकजन्मदुष्कृतैर्जना जनुरन्धा जायन्ते।	४ अनेकजन्मदुष्कृतैर्जना जनुषाऽन्धा जायन्ते।
५ धूर्जटिः कण्ठकाल इति कथ्यते।	५ धूर्जटिः कण्ठेकाल इति कथ्यते।
६ कालजानि वस्तूनि स्वास्थ्यकराणि भवन्ति।	६ कालेजानि वस्तूनि स्वास्थ्यकराणि भवन्ति।
७ कटेशायिनं पथिकं सहचरः प्रातरबोधयत्।	७ कटशायिनं पथिकं सहचरः प्रातरबोधयत्।

सप्तम्यर्थ प्रतिसे परे 'उरस्' से समासान्त अच्प्रत्यय होता है। १. 'किमः क्षेपे' निन्दार्थक किम् शब्दसे परे जो शब्द तदन्तसे समासान्त प्रत्यय नहीं होते।

२. 'ओजःसहोम्भस्तमसस्तृतीयायाः' ओजस्, सहस्, अम्भस् और तमस् से परे तृतीयाका लुक् नहीं होता। ४. *'पुंसानुजो जनुषान्ध इति च' इन शब्दोंके भी तृतीयाका लुक् नहीं होता। ५. 'अमूर्धमस्तकात्स्वाङ्गादकामे' मूर्ध, मस्तक को छोड़कर, स्वाङ्गवाचक शब्दसे सप्तमी का 'अलुक्' होता है। यदि 'काम' उत्तरपदमें हो तो लुक् होता है। यहां कण्ठ शब्द से परे सप्तमी का लुक नहीं हुआ।

६. 'प्रावृट्शरत्कालदिवां जे' 'ड' प्रत्ययान्त 'जन्' परे प्रावृट्, शरत्, काल और दिव् से पर सप्तमीका लुक् नहीं होता। यहां 'ड' प्रत्ययान्त जन् धातु परे है अतः काल शब्दोत्तर सप्तमी का लुक् नहीं हुआ।

७'नेन्सिद्धबध्नातिषु च' इन्नन्त, सिद्ध और बन्धसे अव्यवहित पूर्वमें सप्तमीका अलुक् नहीं होता। यहां इन्नन्त शायी से पूर्व कट से परे सप्तमी का लुक् हो गया।

१ कथं सन्मत्वा पाटच्चरकुलमाश्रयसि ।	१ कथं सन्मत्वा पाटच्चरस्य कुलमाश्रयसि ।
२ पण्डिता वाग्युक्तिं प्रदर्श्य सर्वं कृत्यं सुखेन साधयन्ति ।	२ पण्डिता वाचोयुक्तिं प्रदर्श्य सर्वं कृत्यं सुखेन साधयन्ति ।
३ पुनः पुनः सरलीकृतोऽपि श्वपुच्छो वक्रीभवति ।	३ पुनः पुनः सरलीकृतोऽपि शुनः पुच्छो वक्रीभवति ।
४ अनेके मम पितृच्छात्राः समाप्तविद्या विद्योतन्ते ।	४ अनेके मम पितुश्छात्राः समाप्तविद्या विद्योतन्ते ।

(९) अथ समासाश्रयाधिकारः ।

५ असदाचारैरियं ब्राह्मणी शूद्रीकल्पा दृश्यते ।	५ असदाचारैरियं ब्राह्मणी शूद्रिकल्पा दृश्यते ।
६ पादोपहतं रजोऽपि मूर्धानमधिरोहति ।	६ पदोपहतं रजोऽपि मूर्धानमधिरोहति ।

---

१. 'षष्ठ्या आक्रोशे' निन्दार्थ में षष्ठीका 'लुक्' नहीं होता । यहां निन्दार्थ की व्यक्ति है अतः पाटच्चर शब्दसे परे षष्ठी का लुक् नहीं हुआ ।

२. '*वाग्दिक्पश्यद्भ्यो युक्तिदण्डहरेषु' क्रमशः युक्ति, दण्ड और हरसे पूर्व वाच्, दिश् और पश्यत् शब्द से परे षष्ठी का 'लुक्' नहीं होता । अतः 'वाचो युक्ति' यहां षष्ठीका लुक् नहीं हुआ ।

३. '*शेपपुच्छलाङ्गूलेषु शुनः' शेप, पुच्छ और लाङ्गूल से पूर्व 'शुनः' की षष्ठी का लोप नहीं होता । ४. 'ऋतो विद्यायोनिसम्बन्धेभ्यः' विद्या और योनि सम्बन्धवाचक जो ऋदन्त उससे परे षष्ठी का लुक् नहीं होता । यहां विद्या सम्बन्धवाचक ऋदन्त पितृ शब्द है ।

५. 'घरूपकल्प······' जिसका पुंल्लिङ्ग भी होता है ऐसे ङी प्रत्ययान्त अनेकाच् को ह्रस्व होता है । यदि (घ, रूप, कल्पप्) प्रत्यय परे हो अथवा चेलट्, ब्रुव, गोत्र तथा हत उत्तरपदमें हो । शूद्री ङी प्रत्ययान्त अनेकाच् भाषितपुंस्क है इससे परे कल्पप् प्रत्यय है अतः ह्रस्व हो गया ।

६. 'पादस्य पदाज्यातिगोपहतेषु' आजि, आति, ग तथा उपहत से पूर्व पाद को पदादेश होता है । यहां उपहत से पूर्व पाद शब्द है ।

१ पादकाषिणो भारतादयश्चित्रकूटे रामान्तिकं प्रापुः ।	१ पत्काषिणो भरतादयश्चित्रकूटे रामान्तिकं प्रापुः ।
२ हेमन्तरात्रिष्वप्युदकवासा पार्वती दुश्चरं तपश्चचार ।	२ हेमन्तरात्रिष्वप्युदवासा पार्वती दुश्चरं तपश्चचार ।
३ वने गुञ्जामालाभारिण्यः किरात्यः स्वं वहु मन्यन्ते ।	३ वने गुञ्जामालभारिण्यः किरात्यः स्वं वहु मन्यन्ते ।
४ दुःशासनं हत्वा भीमः प्रतिज्ञाविषये सत्यकारो जातः ।	४ दुःशासनं हत्वा भीमः प्रतिज्ञाविषये सत्यङ्कारो जातः ।
५ लोकोत्तराणां चरितं सर्वेषां भद्रकरणं भवति ।	५ लोकोत्तराणां चरितं सर्वेषां भद्रङ्करणं भवति ।
६ समानरूपयोर्बालिसुग्रीवयोर्भेदो रामेण नालक्षि ।	६ सरूपयोर्बालिसुग्रीवयोर्भेदो रामेण नालक्षि ।
७ कुरथारूढः कुपथगामी च न समीहितसिद्धिं लभेते ।	७ कद्रथारूढः कापथगामी च न समीहितसिद्धिं लभेते ।

---

१. 'हिमकाषिहतिषु च' हिम काषि और हति से पूर्व पाद को पत् होता है । यहां काषिसे पूर्व पाद को पत् हो गया ।

२. 'पेषंवासवाहनधिषु च' पेषं, वास, वाहन और धि से पूर्व वर्तमान उदक को 'उद' आदेश होता है। यहां 'वास' से पूर्ववर्ति उदक को उद आदेश हुआ ।

३. 'इष्टकेषीकामालानां चिततूलभारिषु' चित, तूल, भारीके पूर्व क्रम से इष्टका, इषीका तथा मालाशब्द और तदन्त शब्दोंको भी ह्रस्व होता है। यहां भारी शब्द से पूर्ववर्त्ति माला शब्दान्त गुञ्जामाला शब्दको ह्रस्व हो गया ।

४. 'कारे सत्यागदस्य' कारसे पूर्व सत्य और अगद शब्दसे मुम् होता है । ५. '*उष्णभद्रयोः करणे' करणसे पूर्ववर्त्ति, उष्ण और भद्रको मुम् का आगम होता है । ६. 'ज्योतिजनपदरात्रिनाभि…' ज्योतिः, जनपद, रात्रि, नाभि, नाम, गोत्र, रूप, स्थान, वर्ण, वयस्, वचन और बन्धु से पूर्व विद्यमान 'समान' को 'स' होता है । यहां 'रूप' से पूर्व समान शब्द को 'स' हुआ ।

७. 'रथवदयोश्च' रथ और वदसे अव्यवहित पूर्व 'कु' अव्यय को 'कत्'

१ विरूढमूला वैरिणो दुर्नाशा भवन्ति ।	१ विरूढमूला वैरिणो दूणाशा भवन्ति ।
२ सदसद्विवेकशून्या मर्मविधं वाचं प्रयुञ्जते ।	२ सदसद्विवेकशून्या मर्माविधं वाचं प्रयुञ्जते ।
३ इतस्ततो विचरन्तस्ते रम्यमाम्रवनं ददृशुः ।	३ इतस्ततो विचरन्तस्ते रम्यमाम्रवणं ददृशुः ।

(१०) अथ सन्ध्यधिकारः

४ अभि एधते देवदत्तः ।	४ अभ्येधते देवदत्तः ।
५ प्रति ईक्षते चैत्रो मैत्रम् ।	५ प्रतीक्षते चैत्रो मैत्रम् ।
६ रामस्य अश्वो धावति ।	६ रामस्याश्वो धावति ।
७ महा ईश्वरो भक्तेषु तुष्यति ।	७ महेश्वरो भक्तेषु तुष्यति ।
८ अथ एति दुर्जनः ।	८ अथैति दुर्जनः ।

आदेश होता हैं (का पथ्यक्षयोः) पथि तथा अक्ष और अक्षिसे पूर्व 'कु' को 'का' आदेश होता है । १. '*दुरोदाशनाशदभध्येषूत्वमुत्तरपदादेः ष्टुत्वञ्च' दाश, नाश, दभ तथा ध्यसे पूर्व 'दुर्' के रेफको ऊत्व होता है तथा उत्तरपदके आदिको ष्टुत्व होता है । २. 'नहिवृतिवृषि···'क्विबन्त नह्, वृत्, वृष्, व्यध्, रुच्, सह् और तन् से पूर्वपदको दीर्घ होता हैं । ३. 'प्रनिरन्तः शरेक्षुप्लक्षाम्र···' प्र, निर्, अन्तर्, शर, इक्षु, प्लक्ष, आम्र, कार्ष्य, खदिर, पीयूक्षासे परे वनके नकारको णत्व होता है । यहां आम्र से परे वन शब्द है ।

४. 'इको यणचि' इक् के स्थानमें यण् होता हैं अच् परे संहिता के विषय में । यहां पर अभिके इकार को एकार रूप अच् परे 'य्' हो गया ।

५. 'अकः सवर्णे दीर्घः' अक्से सवर्ण अच् परे पूर्व पर के स्थान में दीर्घ होता है । यहां दोनों इकार को दीर्घ हो गया ।

६. यहां भी पूर्वोक्त सूत्र से दीर्घ हो गया ।

७. 'आद्गुणः' अवर्ण से अच् परे पूर्व पर के स्थान में गुण एकादेश होता है । यहां अकार इकार मिलकर 'एकार हो गया ।

८. 'एत्येधत्यूठ्सु' अवर्ण से एजादि इण, एध धातुका अच् तथा ऊठ् परे पूर्व पर के स्थान में वृद्धि होती है । यहां अकार एकार को ऐकार रूप वृद्धि हुई ।

१ अमीश्वराः क गच्छन्ति ।	१ अमी ईश्वराः क गच्छन्ति ।
२ इदं पुस्तकमेतस्येव ।	२ इदं पुस्तकमेतस्यैव ।
३ वृक्षछाया ग्रीष्मे सुखावहा ।	३ वृक्षच्छाया ग्रीष्मे सुखावहा ।
४ सर्पिःपानमायुःकरं भवति ।	४ सर्पिष्पानमायुष्करं भवति ।
५ एहि रामात्रोपविशामः ।	५ एहि राम ! अत्रोपविशामः ।
६ सर्वकृत्येषु तयोर्मनस्येकताम-वलम्बेते ।	६ सर्वकृत्येषु तयोर्मनसी एकतामवलम्बेते ।
७ अयःकामाय रौप्यदानं निष्फलं सम्पद्यते ।	७ अयस्कामाय रौप्यदानं निष्फलं सम्पद्यते ।
८ सो हि रामो पितुः वचनमनुपा-लयन् वनं जगाम ।	८ स हि रामः पितुर्वचनमनुपालयन् वनं जगाम ।

१. 'अदसो मात्' अदस् शब्द के मकार से परे ईकार तथा ऊकार को प्रगृह्य संज्ञा होती है तथा 'प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम्' इससे प्रकृतिभाव होता है अतः दीर्घ नहीं हुआ ।

२. 'एवे चानियोगे' अवर्ण से अनिश्चयार्थक 'एव' शब्द परे पूर्व पर के स्थान में पररूप होता है । परन्तु यहां निश्चयार्थक है अतः वृद्धिरेचि से वृद्धि हुई ।

३. 'छे च' छकार परे ह्रस्व को तुगागम होता है इससे तुक् जश्त्व श्चुत्वादि हुए।

४. 'नित्यं समासेऽनुत्तरपदस्थस्य' इसन्त तथा उसन्त के विसर्ग को षत्व होता है समासमें । यदि पर में कवर्ग पवर्ग हो तथा उत्तरपदस्थ विसर्ग न हो । अतः यहां ष् हुआ ।

५. 'दूराद्धूते च' इससे प्लुत संज्ञा हुई तथा प्रकृतिभाव होनेसे दीर्घ नहीं हुआ ।

६. 'इदूदेद्द्विवचनं प्रगृह्यम्' ईदन्त ऊदन्त और एदन्त द्विवचन को प्रगृह्य संज्ञा होती है । (प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम्) प्लुत और प्रगृह्य संज्ञक अच्परे पूर्वप्रकृति से (यथापूर्व) रहते हैं । अतः इको यणचि से यण् नहीं हुआ । ७. 'अतःकृकमि···' कृ, कम्, कंस, कुम्भ, पात्र, कुशा और कर्णीसे पूर्व अव्ययभिन्न अकारसे उत्तर विसर्गको सकार होता है । ८. 'एतत्तदोः सुलोपोऽकोरनञ्समासे हलि' ककारान्तभिन्न एतत् और तत् शब्दसे परे सु का

१ हिमर्तौ अम्बरमणिः रमणीयमूर्तिर्विभाव्यते ।	१ हिमर्तावम्बरमणी रमणीयमूर्तिर्विभाव्यते ।

(११) अथ प्रकीर्णाधिकारः ।

२ सर्वं कार्यं ते मे च परिश्रमेणैव साध्यमस्ति ।	२ सर्वं कार्यं तव मम च परिश्रमेणैव साध्यमस्ति ।
३ गच्छ त्वं, ते भागः सुरक्षितः स्थास्यति ।	३ गच्छ त्वं, तव भागः सुरक्षितः स्थास्यति ।
४ कृतज्ञो स शश्वत् ते उपकारान् ध्यायति ।	३ कृतज्ञः स शश्वत्तवोपकारान् ध्यायति ।
५ भगवन् ! ते पादमूलमेव मे दीनस्य शरणम् ।	५ भगवन् । तव पादमूलमेव मे दीनस्य शरणम् ।
६ प्रभो ! कथं निरपराधानेनान् नानुकम्पसे ।	६ प्रभो । कथं निरपराधानेतान् नानुकम्पसे ।

लोप होता है । १. 'ढ्लोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः' ढ तथा रेफ के लोप के निमित्त ढ तथा रेफ परे पूर्व अण् को दीर्घ होता है ।

२. 'न चवाहाहैवयुक्ते' च, वा, हा, अहा और एव के योग में युष्मत् अस्मत् के आदेश नहीं होते । ३. '*समानवाक्ये निघातयुष्मदस्मदादेशा वक्तव्याः, एकतिङ् वाक्यम्' (जहां एक तिङ् (क्रिया) हो उसे वाक्य कहते हैं) एक वाक्यमें ही युष्मदस्मद्के आदेश होते हैं । यहां दो वाक्य हैं अतः आदेश नहीं हुआ ।

४. 'पश्यार्थैश्चानालोचने' चाक्षुषज्ञानसे अतिरिक्त अर्थमें वर्तमान धातुके योगमें युष्मत् अस्मत् के आदेश नहीं होते । यहां चिन्तार्थ (ध्यै) धातुके प्रयोगसे युष्मद्को आदेश नहीं हुआ ।

५. 'आमन्त्रितं पूर्वमविद्यमानवत्' पूर्व जो सम्बोधन वह अविद्यमानसा रहता है । अतः पदसे परे न होने से आदेश नहीं होते । यहां (भगवन्) यह अविद्यमानसा है अतः आदेश नहीं हुआ ।

६. 'द्वितीयाटौस्स्वेनः' द्वितीया विभक्ति और टा, ओस् विभक्ति से पूर्व अन्वादेशमें इदम् और एतत् शब्दको 'एन' आदेश होता है । (यहां अन्वादेश

१ मिथ्याहारविहाराभ्यां सर्वा व्याधय आक्रामन्ति ।	१ मिथ्याहारविहाराभ्यां सर्वे व्याधय आक्रामन्ति ।
२ स्वधर्ममुल्लङ्घ्य तपं तपस्यन् शम्बूको रामेण हतः ।	२ स्वधर्ममुल्लङ्घ्य तपस्तपस्यन् शम्बूको रामेण हतः ।
३ प्रायो जगति सर्वस्य मित्रा अमित्राणि च भवन्ति ।	३ प्रायो जगति सर्वस्य मित्राणि अमित्राश्च भवन्ति ।
४ अङ्गदो रक्षःसदसि निर्भयमविचारीत् ।	४ अङ्गदो रक्षःसदसि निर्भयं व्यचारीत् ।
५ दुर्जनस्य गोष्ठ्यारपवाहनमेवोचितम् ।	५ दुर्जनस्य गोष्ठ्या अपवाहनमेवोचितम् ।
६ एतं गृहं समुद्धर ।	६ एतान् गृहान् समुद्धर ।
७ महेश्वरं निध्यात्वा स्थिरगणपदं लभन्ते भक्ताः ।	७ महेश्वरं निध्याय स्थिरगणपदं लभन्ते भक्ताः ।
८ न भवन्तमृते कोऽपि नः शरणोऽस्ति ।	८ न भवत ऋते कोऽपि नः शरणमस्ति ।
९ पृथ्वीपत्या सावहितं देशरक्षा विधीयते ।	९ पृथ्वीपतिना सावहितं देशरक्षा विधीयते ।

नहीं है)। १-२. व्याधि शब्द पुंल्लिङ्ग है तथा तपस् शब्द सान्त नपुंसक लिङ्ग है। ३. मित्र शब्द नपुंसक लिङ्ग होता है और अमित्र शब्द पुंल्लिङ्ग होता है। ४. 'लुङ्, लङ्, लृङ्' परे धातुसे पूर्व अट् तथा आट्का आगम होता है। ५. दीर्घ आकारके बाद विसर्गका किसी भी स्वरके सामने रहनेपर लोप हो जाता है। ६. 'गृहाः पुंसि च भूम्न्येव' (अमरः) गृह शब्द पुंल्लिङ्गमें बहुवचनमें ही होता है। ७. 'समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्' नञ्से अतिरिक्त अव्यय यदि पूर्व हो तो 'क्त्वा'के स्थानमें 'ल्यप्' होता है। यहां निपूर्वक 'ध्यै' धातु है अतः ल्यप् हुआ। 'लभ्' धातु अनुदात्तेत् होनेसे आत्मनेपदी है।

८. 'अन्यारादितरर्ते···' इनके योगमें पञ्चमी विभक्ति होती है। (भवतः) तथा (शरणं गृहरक्षित्रोः) [कोशः] शरण शब्द नित्य नपुंसक है। ९. 'पतिः

१ पण्डिता अनुक्तमपि जानन्ते ।	१ पण्डिता अनुक्तमपि जानते ।
२ उदयास्तसमये भास्करे प्रचुरा रक्तिमा दृश्यते ।	२ उदयास्तसमये भास्करे प्रचुरो रक्तिमा दृश्यते ।
३ राष्ट्रं चारु शासन्तं राजानं को न बहु मन्यते ।	३ राष्ट्रं चारु शासतं राजानं को न बहु मन्यते ।
४ ते स्वच्छसरस्यां वस्त्राणि अनेनिजन् ।	४ ते स्वच्छसरस्यां वस्त्राण्यनेनिजुः ।
५ नीचाः अकारणं द्रोहधियं बिभ्रन्ति ।	५ नीचा अकारणं द्रोहधियं बिभ्रति ।
६ यतिर्नगरस्य बहिः कुटीरेऽध्यवात्सीत् ।	६ यतिर्नगराद्बहिः कुटीरमध्यवात्सीत् ।
७ पदे निविशन् कण्टकः बहु दुःखयति ।	७ पदे निविशमानः कण्टको बहु दुःखयति ।
८ आत्मानमजानन्तो जना नश्वरभोगेषु आरमन्ते ।	८ आत्मानमजानन्तो जना नश्वरभोगेष्वारमन्ति ।

समास एव' पतिशब्दको समास ही में 'घि' संज्ञा होती है । १. 'श्नाभ्यस्तयोरातः' इससे आकारके लोप हो जानेपर (आत्मनेपदेष्वनतः) अनकारसे परे 'झ' को आत्मनेपदमें 'अत्' आदेश होता है । २. रक्तिमा 'इमनिच्' प्रत्ययान्त होता है, यहां पुंल्लिङ्ग है अतः 'प्रचुरः' होना चाहिये । ३. 'जक्षित्यादयः षट्' (जक्षितिश्च दरिद्रातिश्चकास्तिः शास्तिरेव च । दीधीवेवी च जागर्तिः जक्षादिः सप्तधातुभिः) इन धातुओंकी अभ्यस्त संज्ञा होती है । तथा (नाभ्यस्ताच्छतुः) अभ्यस्तसे परे शतृ को नुमागम नहीं होता । (इसी तरह 'ददत्' 'दधत्' प्रभृति प्रयोग होंगे) ४. 'सिजभ्यस्तविदिभ्यश्च' सिच् अभ्यस्त और विद्से परे ङित्सम्बन्धि 'झि' को जुस् होता है । (यहां अभ्यस्त है) ५. 'अदभ्यस्तात्' अभ्यस्त से परे झि के 'झ' को 'अत्' होता है । ६. 'अपपरिबहिः···' इस निर्देशसे 'बहिः' के योगमें पञ्चमी विभक्ति होती है तथा ('उपान्वध्याङ्वसः' से अधिकरण को कर्मसंज्ञा होती है । ७. 'नेर्विशः' निपूर्वकविश् धातुसे आत्मनेपद होता है । ८ 'व्याङ्परिभ्यो रमः' वि, आङ् और परि पूर्वक 'रम्' धातुसे आत्मने

१ कृतपाणिग्रहोऽजो दारया समेतः साकेतं प्रतस्थौ ।	१ कृतपाणिग्रहोऽजो दारैः समेतः साकेतं प्रतस्थे ।
२ भीभो वधोराश्वासं विधाय कञ्चुकि प्राह–महाराजानं पश्यतुमीहामि, निवेदय भवान् ।	२ भीमो वध्वा आश्वासं विधाय कञ्चुकिनं प्राह–महाराजं द्रष्टुमीहे, निवेदयतु भवान् ।
३ पानीयं प्रार्थयित्वा स तृषां निवारयति ।	३ पानीयं प्रार्थ्य स तृषं निवारयति ।
४ कष्टं, सोदरा अपि भ्रातारः परस्परं कलहायन्ते ।	४ कष्टं, सोदरा अपि भ्रातरः परस्परं कलहायन्ते ।
५ युद्धे निहताः शूरा आकल्पं देवैः सहामरपुरि मोदन्ते ।	५ युद्धे निहताः शूरा आकल्पं देवैः सहामरपुरे मोदन्ते ।
६ अर्थानि वितरतो यथोदारस्य सन्तोषं जायते न तथा प्रतिगृह्णतः ।	६. अर्थान् वितरतो यथोदारस्य सन्तोषो जायते न तथा प्रतिगृह्णतः ।
७ मूषिकमार्जारयोरिव सबलाबलयोर्विरोधो भवति ।	७ मूषिकमार्जारस्येव सबलावलयोर्विरोधो भवति ।
८ वृकोदरो गदया सुयोधनोरू आजघ्ने ।	८ वृकोदरो गदया सुयोधनोरू आजघान ।

पद नहीं होता । १. 'दार' शब्द पुंल्लिङ्ग तथा बहुवचन ही में होता है । २. 'वधू' शब्द दीर्घ ऊकारान्त है, 'कञ्चुकिन्' नान्त है, 'महाराज' में **'राजाहःसखिभ्यष्टच्'** इससे टच् होता है तथा 'दृश्' धातुको 'पश्य' आदेश, शित् तथा सार्वधातुक प्रत्यय परे ही होता है । ३. **'समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्'** नञ् समाससे अतिरिक्त स्थलमें यदि अव्यय पूर्वमें हो तो क्त्वा के स्थानमें 'ल्यप्' होता है तथा 'तृष्' शब्द हलन्त है । ४. **'अप्तृन्तृच्स्वसृनप्तृनेष्टृ…'**उणादिसे सिद्ध तृन् तृजन्तोंमें केवल नप्त्रादि की ही उपधाको दीर्घ होता है । अतः भ्रातृ प्रभृतिमें दीर्घ न होगा । ५. **'ऋक्पूरब्धूःपथामानक्षे'** इनसे समासान्त 'अ' प्रत्यय हो जाता है । ६. 'अर्थ' तथा 'सन्तोष शब्द' नित्य पुंल्लिङ्गमें होते हैं । ७. **'येषाञ्च विरोधः शाश्वतिकः'** जिनका जन्मसिद्ध विरोध है उनका द्वन्द्व एकवत् होता है । ८. **'आङो यमहनः'** आङ्पूर्वक यम तथा हन् धातुसे आत्मनेपद होता है ।

१ स्वामिनं सेवन् भृत्यः प्रीतिभाजनं जातः।	१ स्वामिनं सेवमानो भृत्यः प्रीतिभाजनं जातः।
२ अधुना पुस्तकालये शतानि पुस्तकानि सन्ति।	२ अधुना पुस्तकालये शतं पुस्तकानि सन्ति।
३ क्रोधं, मोहं, लोभश्च जगति सर्वानाकुलयन्ति।	३ क्रोधो मोहो लोभश्च जगति सर्वानाकुलयन्ति।
४ सन्ति साम्प्रतमपि गुणगृहीतारः।	४ सन्ति साम्प्रतमपि गुणग्रहीतारः।
५ 'किं वयं भोजनं लभिष्याम' इति क्षुधार्ताः पप्रृच्छुः।	५ 'किं वयं भोजनं लप्स्यामहे' इति क्षुधार्ताः पप्रच्छुः।
६ उदाराः प्राणमप्यदेयं न मन्यन्ते।	६ उदाराः प्राणानप्यदेयान्न मन्यन्ते।
७ महतां क्षोभः प्रणतिना शाम्यति।	७ महतां क्षोभः प्रणत्या शाम्यति।
८ महत्या महिम्ना महितो राजा वराजति।	८ महता महिम्ना महितो राजा विराजते।

पर (*स्वाङ्गकर्मकाच्च) इस वार्तिकसे यदि अपना अङ्ग कर्म हो तो आत्मनेपद होता है, पराङ्ग यदि कर्म हो तो परस्मैपद होता है। यहाँ पराङ्ग कर्म है अतः परस्मैपद हुआ।

१. 'सेव' धातु अनुदात्तेत् होनेसे आत्मनेपदी होता है (भाजन शब्द नित्य नपुंसक है) २. 'विंशत्याद्याः सदैकत्वे'* शतसे सर्वदा एकवचन ही होता है। ३. 'घञन्ताः पुंसि' घञन्त पुल्लिङ्ग ही होते हैं। ४. 'सम्प्रसारण' का कोई निमित्त न होनेसे 'ग्रहीतारः' होता है। ५. 'लभ' धातु आत्मनेपदी है तथा 'अनिट्' होनेसे 'इट्' नहीं होता। ६. 'पुंसि भूम्न्यसवः प्राणाः' (अमरः) प्राण शब्द बहुवचनमें तथा पुल्लिङ्ग ही होता है। ७. 'स्त्रियां क्तिन्' क्तिन्नन्त स्त्रीलिङ्ग में ही होते हैं। ८. महिमन् शब्द पुंल्लिङ्ग है अतः विशेषण भी पुल्लिङ्गमें ही होगा। तथा राज् धातु अनुदात्तेत् होनेसे आत्मनेपदी है।

* अयम्भावः—'विंशत्याद्याः सदैकत्वे सर्वाः संख्येयसंख्ययोः' इत्यमरोक्त्या विंशतेरारभ्य संख्यावाचिनामेकवचन एव सदा प्रयोगः, विंशत्यादिभिः संख्यासंख्येययोरुभयोर्बोधो भवति। यथा 'विंशतिः छात्राः' अत्र विंशतित्वविशिष्टाः छात्राः प्रतीयन्ते। 'छात्राणां विंशतिः' इत्यत्र तु छात्रगतविंशतित्वसंख्या प्रतीयते। एवमन्यत्राप्यूह्यम्। विस्तरस्तु—'कौमुदीरूपलता'यां द्रष्टव्यः।

१ अजां ग्रामो नीयते।	१ अजा ग्रामं नीयते।
२ मास आस्यते माणवकम्।	२ मासमास्यते माणवकः।
३ गां दुह्यते पयः।	३ गौर्दुह्यते पयः।
४ अन्वतापि पापः।	४ अन्वतप्तः पापेन।
५ उत्तप्यते सुवर्णं स्वर्णकारः।	५ उत्तपति सुवर्णं स्वर्णकारः।
६ देवदत्तो विष्णुं तुष्टुवे।	६ देवदत्तेन विष्णुस्तुष्टुवे।

इति प्रकीर्णाधिकारः।

---

१. (प्रधाने नीह्रीकृष्वहाम्) इस नियम से प्रधान जो अजारूप कर्म उसी में प्रत्यय अभीष्ट है।

२. (प्रयोज्यकर्मण्यन्येषाम्) इस नियम से णिजन्त में प्रयोज्य कर्म माणवक में ही प्रत्यय हुआ।

३. 'गौणे कर्मणि दुह्यादेः' इस नियमसे अप्रधान कर्म 'गो' में प्रत्यय हुआ।

४. 'तपोऽनुतापे च' कर्मकर्तृ तथा अनुताप अर्थ में तप् धातु के च्लि को चिण् नहीं होता।

५. 'तपस्तपःकर्मकस्यैव' तप जिसका कर्म हो ऐसे तप धातु के कर्ता को कर्मवत् विधान होता है। यहां सुवर्ण कर्म है अतः यक् तथा आत्मनेपद नहीं हुआ।

६. कर्ममें प्रत्यय होनेसे कर्म उक्त होने से प्रथमा तथा कर्ताके अनुक्त होने से तृतीया हो गई।

इति पण्डित श्रीमहादेवोपाध्यायविरचितं व्युत्पत्तिप्रदर्शनं समाप्तम्।

अथ गूढाशुद्धिप्रदर्शनम् ।

[1]पतिना रक्षिता[2] सर्वा[3] दारा भवति[4] शोभना[5] ।
सर्वां[6] विधिं गृहानां[7] सा[8] करोति[9] मतिना[10] मुदा ॥ १ ॥
ते[11] गृहः[12] कुत्र [13]मित्रा३स्ति द्रक्षिष्यामि[14] [15]सखेरहं[16] ।

---

१. पत्या । पति शब्द को समास में ही घिसंज्ञा होने से नाभाव नहीं होता ।
२. रक्षिताः । दारशब्द के 'दाराः पुंसि च भूम्नि एव' इस नियम से पुंल्लिङ्ग और नियत बहुवचनान्त होनेसे उसका विशेषण 'रक्षित' शब्द भी वैसा होगा ।
३. सर्वे । दारशब्दका विशेषण होनेसे सर्वशब्द भी पुंल्लिङ्ग बहुवचनान्त होगा ।
४. भवन्ति । दाररूप कर्ता के अनुसार भवनक्रिया से बहुवचन होगा ।
५. शोभनाः । पूर्वोक्तनियमानुसार दारविशेषण शोभन से भी बहुवचन होगा ।
६. सर्वम् । 'क्यन्तो घुः' इस लिङ्गानुशासनक्रम से किप्रत्ययान्त विधि शब्द के पुंल्लिङ्ग होने से उसका विशेषण सर्व शब्द भी पुंल्लिग होगा ।
७. गृहाणाम् । 'अट्कुप्वाङ्' से णत्व हो जायगा ।
८. ते । तत् शब्द प्रस्तुत बुद्धिविषय का ग्राहक होने के कारण उपस्थित दारा अर्थ का बोधक होने से पुंल्लिङ्ग बहुवचनान्त होगा ।
९. कुर्वन्ति । कर्तृवाच्य में कर्ता के अनुसार क्रिया में वचन और पुरुष की व्यवस्था होने से यहाँ बहुवचनान्त होगा ।
१०. मत्या । स्त्रीलिङ्ग में नाभाव का निषेध है अतः ना आदेश नहीं होगा ।
११. तव । 'अनुदात्तं सर्वमपादादौ' ऐसा सूत्र है अतः यहाँ पादके आदिमें रहनेसे तवको ते आदेश नहीं होगा ।
१२. गृहम् । 'गृहाः पुंसि च भूम्न्येव' इस नियम से एकत्व संख्या अर्थ में गृह शब्द से नपुंसक में एकवचन होना ही समुचित है ।
१३. मित्र ३ । अस्ति । सम्बोधन में प्लुत होनेसे प्रकृतिभाव होगा ।
१४. द्रक्ष्यामि । दृश्धातुको अनिट् होने से लृट् में स्य प्रत्ययको इट् नहीं होगा ।
१५. सख्युः । सखि शब्द को घिसंज्ञाका निषेध होने से 'घेर्ङिति' से गुण न होकर यण् और 'ख्यत्यात्परस्य' इस सूत्रसे उत्व हो जायगा ।
१६. अहम् । हल्के परे न होनेसे 'मोऽनुस्वारः' से अनुस्वार नहीं होगा ।

विहित्वा[१] सर्वकार्याणि[२] विप्रं[३] दद्यां बहुं[४] धनम् ॥ २ ॥
प्रभुक्त्वा[५] त्वं गृहेणाद्य[६] आगतो[७] सखिना[८] सह ।
[९]भ्रातर्त्वदीयमित्रोऽत्र[१०] नागतः[११] केन हेतुना ॥ ३ ॥
तव[१२] साकं गमिष्येऽहं[१३] नोचेत् प्रेमस्य[१४] बन्धने[१५] ।
मरिष्ये[१६] नात्र संदेहस्त्यजिष्यामि[१७] असुं[१८] निजम्[१९] ॥ ४ ॥

---

१. विधाय । 'समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्' से क्त्वा का ल्यप् हो जानेपर तकारादिके परमें नहीं रहनेसे 'दधातेर्हिः' से हि आदेश नहीं होगा ।
२. कार्याणि । रेफ के उत्तर नकार को 'अट्कुप्वाङ्' से णकार हो जायगा ।
३. विप्राय । दाधातुके योगमें सम्प्रदान संज्ञा होकर चतुर्थी हो जायगा ।
४. बहु । धन शब्द के विशेषण होनेसे बहुसे भी नपुंसकत्व होगा ।
५. प्रभुज्य । 'समासेऽनञ्पूर्वे' से ल्यप् हो जायगा ।
६. गृहात् । अपाय अर्थ भासित होनेपर ध्रुवसे अपादानमें पञ्चमी हो जाती है ।
७. आगतः । 'वा शरि' इस सूत्रसे शर् परे रहने पर विकल्पसे विसर्गको विसर्ग हो जाता है । पक्षान्तरमें विसर्गको सकार हो जायगा ।
८. सख्या । सखि शब्द को घिसंज्ञा नहीं होती अतः टाको ना नहीं होगा ।
९. भ्रातस्त्वदीयम् । 'विसर्जनीयस्य सः' से विसर्ग को सकार होगया ।
१० मित्रम् । सखिवाचक मित्रशब्द नपुंसक ही माना गया है ।
११. नागतम् । नपुंसक मित्र का विशेषण होने से नपुंसक ही होगा ।
१२. त्वया । सहार्थवाचक शब्दके योगमें 'सहयुक्तेऽप्रधाने' से तृतीया होगी ।
१३. गमिष्यामि । गम्धातु परस्मैपदी है अतः तङ् नहीं होगा ।
१४. प्रेम्णः । प्रेमन् शब्द नकारान्त है इसलिये अदन्तत्व के अभाव होने से 'टाङसिङसामिनात्स्याः' इस सूत्र से ङस् को स्य आदेश नहीं होगा ।
१५. बन्धनात् । हेतु अर्थ में 'हेतौ' इस सूत्र से पञ्चमी हो जाती है ।
१६. मरिष्यामि । मृधातु को लुङ् लिङ् और शित्प्रत्यय में 'म्रियतेर्लुङ्लिङोश्च' इस सूत्र से आत्मनेपद होने से लृट् में परस्मैपद ही होगा ।
१७. त्यक्ष्यामि । त्यज् धातु को अनिट् होने से इडागम नहीं हुआ ।
१८. असून् । असु शब्द बहुवचनान्त है । ('पुंसि भून्म्यसवः प्राणाः')
१९. निजान् । बहुवचनान्त असु के विशेषण होने से बहुवचनान्त होगा ।

वर्त्मेनानेन[1] गच्छन्तः कर्म[2] कुर्वन्ति ये नरः[3] ।
नमस्कृत्वा[4] प्रभुं यान्ति मरित्वा[5] ते न संशयः ॥ ५ ॥
गुरुणा[6] श्रुतिमधीते नाधीती शब्दानुशासनम्[7] ।
न्यायशास्त्रमधीयन्तो[8] नो बिभ्यन्ति[9] केनचित्[10] ॥ ६ ॥
ये नो ददन्ति[11] नो भुङ्क्ते[12] पुनर्रमन्ति[13] योषितैः[14] ।

---

१. वर्त्मना । वर्त्मन् शब्द नान्त है अतः टाको इन आदेश नहीं हुआ ।
२. कर्म । कर्मन् शब्द नकारान्त नपुंसक है इसलिये 'स्वमोर्नपुंसकात्' से अम् विभक्ति का लुक् होकर नकार का भी लोप हो जायगा ।
३. नराः । नर शब्द को अदन्त होने से जस् विभक्ति में 'प्रथमयोः' से दीर्घ हो जाता है । ऋकारान्त नृ शब्द के ग्रहण पक्ष में 'नरः' का प्रयोग ठीक ही है ।
४. नमस्कृत्य । गति संज्ञक नमः शब्द के साथ 'कृत्वा' को 'कुगतिप्रादयः' से समास होने पर 'समासेऽनञ्पूर्वे' से क्त्वा को ल्यप् हो जायगा ।
५. मृत्वा । मृधातु अनिट् है इसलिये इडागम नहीं होगा और कित् होने से 'क्ङिति च' से गुण का निषेध भी हो जायगा ।
६. गुरोः । 'आख्यातोपयोगे च' से नियम पूर्वक जिससे विद्या ग्रहण करें उससे अपादान संज्ञा द्वारा पञ्चमी हो जाती है ।
७. शब्दानुशासने । 'क्तस्येन्विषयस्य कर्मण्युपसंख्यानम्' से सप्तमी होगी ।
८. अधीयानः । इङ् धातु आत्मनेपदी है इसलिये शानच् प्रत्यय होगा ।
९. बिभ्यति । भीधातु अभ्यस्त संज्ञक है इसलिये 'अदभ्यस्तात्' से झि प्रत्यय का अत् आदेश होजायगा ।
१०. कस्माच्चित् । भयार्थक धातु के योग में 'भीत्रार्थानां भयहेतुः' से भय के हेतु वाचक शब्द के अपादान संज्ञा द्वारा पञ्चमी हो जाती है ।
११. ददति । दाधातु भी अभ्यस्त संज्ञक है अतः अदादेश होगा ।
१२. भुञ्जते । कर्ता के बहुत्व होने से बहुवचनकी क्रिया होगी ।
१३. पुनारमन्ते । रम् धातु आत्मनेपदी है इसलिये झप्रत्यय का अन्त आदेश होकर 'रोरि' इस से रेफ का लोप होने पर दीर्घ हो जायगा ।
१४. योषिद्भिः । योषित् शब्द तकारान्त है अतः ऐसादेश नहीं होगा ।

जहित्वा[1] सर्वं ते जान्ति[2] जगतेऽस्मिन्[3] विनिन्दितः ॥ ७ ॥
सन्धिस्त्वया न कर्तव्या[4] महती[5] रिपुणा सह ।
प्राप्ते[6] विपत्तौ धीरत्वं नो जहन्ति[7] महज्जनाः[8] ॥ ८ ॥
फले इमेऽतिमधुरे[9] बाला जक्षन्ति[10] हर्षिताः[11] ।
क्रीडन्ते[12] च अहोरात्रं[13] रोदन्ति[14] न कदाचनः[15] ॥ ९ ॥
नीचाऽपि[16] ये नमस्यन्ति विष्णवे[17] कुप्यन्ति नो नवा ।
प्राप्त्वा[18] महत्वमाप्तास्ते वञ्चयन्ति[19] न सज्जनान् ॥ १० ॥

---

१. हात्वा ! क्त्वा प्रत्यय आर्वधातुक है इसलिये श्लु प्रत्यय नहीं होगा ।
२. यान्ति । या धातु यकारादि है इसलिये जकारादि अशुद्ध है ।
३. जगति । जगत् शब्द तान्त है अतः ङिविभक्ति में गुण नहीं होगा ।
४. कर्तव्यः । सन्धि शब्द पुंल्लिङ्ग है अतः उसका विशेषण पुंल्लिंग ही होगा ।
५. महान् । पुंल्लिङ्ग सन्धिशब्दका विशेषण होनेसे यहां भी पुंल्लिङ्ग ही होगा ।
६. प्राप्तायाम् । विपत्तिशब्द का विशेषण होनेसे यह भी स्त्रीलिङ्ग हो जायगा ।
७. जहति । 'अदभ्यस्तात्' से झिप्रत्ययको अत् आदेश होगा ।
८. महाजनाः । महत् शब्दको 'आन्महतः' से आत्व होगा ।
९. इमे अतिमधुरे । 'ईदूदेद्द्विवचनम्' से प्रगृह्य होकर प्रकृतिभाव होगा ।
१०. जक्षति । 'जक्षित्यादयः षट्' से झिप्रत्ययको अत् आदेश होगा ।
११. हृष्टाः । हृष्धातु अनिट् है अतः इडागम नहीं होगा ।
१२. क्रीडन्ति । क्रीडधातु परस्मैपदी है अतः आत्मनेपद नहीं होगा ।
१३. चाहोरात्रः । श्लोकपादके मध्यमें रहने से सन्धि और 'रात्राह्नाहः पुंसि' से पुंस्त्व हो जायगा ।
१४. रुदन्ति । ङित् होनेसे गुण नहीं होगा ।
१५. कदाचन । अव्यय होनेसे विभक्ति नहीं होगी ।
१६. नीचा अपि । यलोप की असिद्धता होनेसे दीर्घ नहीं होगा ।
१७. विष्णुम् । कर्मत्व होनेसे कर्म में द्वितीया होगी ।
१८. प्राप्य । 'समासेऽनञ्पूर्वे' से क्त्वा प्रत्ययको ल्यप् आदेश होगा ।
१९. वञ्चयन्ते । 'गृधिवञ्च्योः' से आत्मनेपद होजायगा ।

व्युत्पत्तिप्रदर्शने प्रश्नाः

१९५०

अधोलिखितेषु वाक्येषु शुद्धरूपाणि लेख्यानि—

(१) माम् पुष्पाणि रोचन्ते। (२) त्वया केन गुरुणा वेदोऽधीतः।
(३) सीता भर्तृणा सह वनं गच्छन्ती रुरोद। (४) कदा कार्यमयं व्रतम्।
(५) स चौर्यकर्मणि न जुगुप्सते। (६) कथं न विरमसे पापात्।
(७) को न शुश्रुषति प्रियां वाचम्।

१९५१

अधो विन्यस्तेषु चतुर्णां शुद्धरूपाणि सकारणनिर्देशं देयानि—

(१) मुनयो गङ्गातीरे तिष्ठेतम्। (२) आवां गीतां पठितवन्तः।
(३) मया द्वे श्लोके न पठिते। (४) भास्करो ना क्रमति रात्रौ।
(५) बालः स्वखट्वायामधिशेते।

१९५५

अधोलिखितेषु पञ्च वाक्यानि हेतुनिर्देशपूर्वकं शोधनीयानि—

(१) योऽद्य विहरति स एव तदाऽपि अविहरत्।
(२) भवान् कदानीं यास्यति ! मया तु परश्वो गमिष्ये।
(३) आर्यावर्ते स्त्रियः प्रायशः स्वपत्या समं वहिर्न पर्यटन्ति।
(४) भवानेतानि किमिति न परिक्रीणाति।
(५) पिकशावः काकीभिः पाल्यते नतु काकीशावः पिकैः।
(६) इदमत्यन्तमशुद्धं वाक्यं, एनं वैयाकरणोऽपि न वेत्ति।
(७) रे, क्रोष्टः किमिति रोरवीषि ?

१९५६

अधोलिखितेषु पञ्च वाक्यानि हेतुनिर्देशपूर्वकं शोधनीयानि—

(१) एष शकुनो नित्यं भोजनसमये उपतिष्ठति।
(२) को न मधुरगानं शुश्रूषति श्रुतिमान् ?
(३) एते जम्बूफलानि विक्रीणन्ते।
(४) स्त्रीपुंसोः स्नेह एव सर्वसुखेभ्यो विशिष्यते।
(५) नो देहि पुस्तकमेतद्।
(६) यस्तव गृहं परिष्करोति स एव मद्गृहमपि परिश्चकार।
(७) स द्वौ श्लोकौ विरच्य प्रेषितवान्।

\

१९५७

अधोलिखितेषु कानिचित् पञ्च वाक्यानि हेतुनिर्देशपूर्वकं शोधनीयानि—

(१) देवेभ्यो नमस्कुर्मः।

(२) दयापात्रोऽयं वालकः।

(३) त्वन्तु क्षीरपी तव भ्राता च सुरापी इति महदाश्चर्यम्।

(४) स्वसारं भ्रातारं च वन्दते वालः।

(५) सर्वैर्ज्ञानानि लभनीयानि।

(६) विपया कृष्टो दरिद्राति। दानिनस्तु न दरिद्रान्ति।

(७) पञ्जरस्थोऽपि सिंहः जनान् भीपयत्येव।

१९५८

अधोलिखितेषु कानिचिच्चत्वारि वाक्यानि शोधनीयानि—

(१) शुद्धेऽपि वाक्ये सन्देहो भवितव्यम्। (२) न त्वां तृणाय मन्वे।

(३) अहं परश्वां गमिष्यामि? (४) पश्यतां भवद्भिः काशी नगरी।

(५) स्वगृहो जीर्णोऽपि मां रोचते। (६) नमस्कुर्वो गुरवे प्रत्यहनि।

(७) निशापत्यौ अस्तंगते मार्गमन्धकारावृतं जातम्।

(८) मातारं भ्रातारं च पश्य।

१९६०

अधोलिखितेषु वाक्येषु कानिचित् पञ्चवाक्यानि शोधनीयानि—

(१) स्वसारो भ्रातारश्च परस्परं स्निह्यन्ति।

(२) सेवाग्रामेऽधिवसतं महात्मानं द्रष्टुं को न तत्र जिगिमपति।

(३) प्रकम्पकः पादपान् कम्पयते।

(४) वज्रेऽविहरत् व्रजनन्दनः।

(५) वः शिवः कल्याणं विधत्ताम्।

(६) विदधति विधिपूर्वं यः स्वकार्यं स धीमान्।

(७) स्त्रीपुंसोः स्नेह एव सर्वसुखेभ्यो विशिष्यते।

(८) धनिकैवितरिते न वित्तेन अनेकाः संस्थाश्चलन्ति।

१९६१

अधोलिखितेषु वाक्येषु पञ्च वाक्यानि शोधनीयानि—

(क) नन्दप्राङ्गणसंस्थितो हरिरसौ सानन्दमाक्रीडन्ति।

(ख) आर्यावर्ते ललनाः प्रायशः स्वपत्या समं वहिर्न पर्यटन्ति।

(ग) विजयतु महाराजः। (घ) उद्धताः पुरुपाः धर्ममुच्चरन्ति।

(ङ) नद्यः प्रवहन्तेऽनिशम्। (च) महीं भुञ्जते भूभुजः।

(छ) पाणिपादौ प्रातः प्रक्षालितव्यौ।

INDIAN INSTITUTE OF ADVANCED STUDY

Acc. No. ________

Author: ________

Title: ________

Borrower	Issued	Returned